श्रीजानकीवल्लभोविजयते

श्री

जानकी गीत

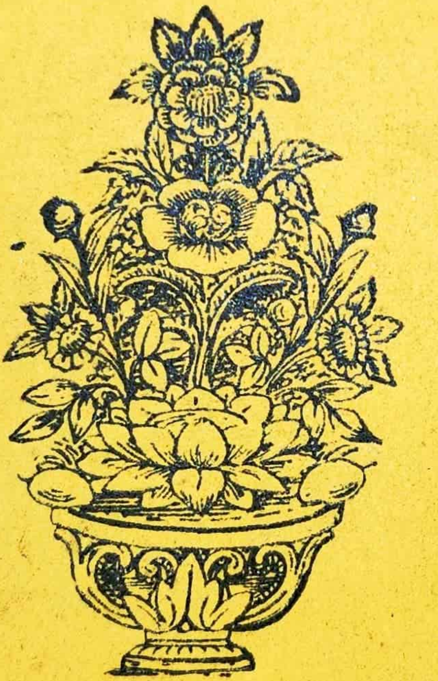

अनुवादकः—

पं० श्रीसीताराम शरण

❁ श्रीमन्मैथिलीप्राणवल्लभो विजयते ❁

श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य्यैः श्रीमद्रामानन्दीय-
वैष्णवकुलकैरवकलापकलानाथैः श्रीगालवाश्रम-
(गलतागादी) पीठाधीश्वरैः श्रीहर्य्याचार्य्य-
स्वामिभिः प्रणीतं-

श्रीजानकीगीतम्

स्वामिश्रीबलदेवसूरिविरचित-
भाष्योपेतम्

तच्च—

श्रीसद्गुरुसदनाधीश-रसिकाचार्य्यस्वामिश्रीमद्रामवल्लभा-
शरणमुख्यशिष्यस्वामिश्रीमद्रामकृपालुशरण-
चरणाश्रितेन श्रीसीतारामशरणेन रसबो-
धिनीभाषाभाष्येण समलंकृतम्

प्रथम संस्करण
५००

संवत् २००६ विक्रमीय
फाल्गुन शुक्ल द्वितीया
रविवार

प्रकाशकः—

पं० श्रीसीतारामशरण व्यासः,
स्वामी श्रीमणीरामजी की छावनी
श्रीअवधधाम (उत्तर प्रदेश)

प्रथम-संस्करण ५००

सर्वाधिकार सुरक्षित

श्रीअग्रस्वामी की जयन्ती
फाल्गुन शुक्ल द्वितीया
रविवार

मुद्रक—
श्रीसरयूप्रसाद, श्रीवास्तव्य
श्रीहनुमत प्रेस-श्रीअयोध्याजी
(उ० प्र०)

✻ श्रीसीतारामाभ्यांनमः ✻

श्री जानकीगीतम्

रासमण्डलमध्यस्थं रसोल्लाससमुत्सुकम् ।
श्रीसीताराममहं वन्दे सखीगणसमावृतम् ॥

श्रीहनुमत् प्रेस श्रीअयोध्याजी

॥ श्रीनित्यनिकुञ्जविहारिणीविहारिणौ नमः ॥

समर्पण

योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिह लोके परत्र च।
तत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम् ॥

'जैसा कुछ मैं हूँ, तथा ऐहिलौकिक, पारलौकिक जो भी
कुछ मेरी वस्तुयें हैं, वह सब कुछ आप युगल-
किशोर चितचोर के युगल चरणों में
समर्पण कर चुका हूँ।'

जब आत्मसमर्पण हो चुका, तब आपकी वस्तुमें स्वत्व का आरोपण करना स्वस्वरूप विरुद्ध है, अतः अपनी भोग्य वस्तु को स्वयं सँभालिये, तथा सदा के लिये इस दीन को सचेत करदें, जिसमें एकमात्र आपकी वस्तु पर अपना अधिकार न जँमाये।

आपने जो कुछ लिखवाया अपना कैङ्कर्य समझकर वैसा ही लिख दिया, ये आपकी ही वस्तु को आपको सहर्ष समर्पण कर रहा हूँ इसे स्वीकार कीजिये,

आपकाही,
सीताराम शरण

❋ श्रीजानकीवल्लभो विजयतेतराम् ❋

अनन्त श्रीविभूषित स्वामिहर्य्याचार्यचरणप्रणीतं श्रीजानकीगीतं समवलोक्य नितरां मे चेतः प्रसीदति। षष्ठसर्गात्मकोऽयं प्रबन्धो विलसति, एतावता प्रबन्धेन ग्रन्थकृता साङ्गशृङ्गारो निरूपितः। यथाऽयं ग्रन्थो महीयान् वर्तते, तथैवास्य भाष्यकाराः श्रीबलदेवसूरिवर्य्याः निखिलशास्त्रपारंगताः स्वभाष्येण ग्रन्थरत्नमिदमलङ्कुरिति महान् प्रमोदविषयः। अस्मिन् प्रबन्धे ग्रन्थकृता श्रुतिस्मृतिप्रतिपादितं तत्वं सूत्ररूपेण प्रतिपादितम्, अतएव श्रुतिस्मृत्यादि सच्छास्त्राणां न केषाञ्चिद् विरोधः सर्वेषां सौलभ्याय सहृदयरसिकजन प्रमोदाय च महता परिश्रमेण श्रीसीतारामशरणशास्त्रिणा ग्रन्थरत्नमिदं रसबोधिनी भाषाटीकया समलंकृतम्। भाषाव्याख्यानेऽपि श्रुतिस्मृत्यविरोधः सिद्धान्तः प्रतिपादितः, मध्ये २ पूर्वाचार्य्याणां पद्यानि योजितानि तेन ग्रन्थस्य तात्पर्य्यं स्फुटतरं प्रतिभाति, भाषाव्याख्यानस्य लालित्यञ्च चकास्ति। मया श्रीजानकीवल्लभं प्रति प्रार्थ्यते यत् अस्य ग्रन्थस्यालोऽनेन सर्वेषां भावुकानां हृदि रसराजसञ्चारो भवेदिति शम्।

रामपदार्थदास वेदान्ती

श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी

❀ श्रीजानकीवल्लभो विजयते ❀

❀ श्रीमत्यैचन्द्रकलायै नमः ❀ श्रीमत्यैचारुशीलायै नमः ❀

॥ श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः ॥

❀ श्रीमते हर्य्याचार्याय नमः ❀

* भूमिका *

सौमित्र्याद्युरुशाखिको बहुविधक्रीडाप्रवालोत्करः।
कीर्त्युद्यत्कुसुमो भवार्त्तिशमनच्छायः समन्ताच्छुभः॥
भक्तानन्दफलप्रदो विभुरपि प्रेम्णा समालोकितः।
सीताकल्पलताश्रितो विजयते श्रीरामकल्पद्रुमः॥

(श्रीहर्य्याचार्य वि० श्रीरामस्तव० भा० मङ्गलाचरण)

अखिलहेयप्रत्यनीक, अपरिमितकल्याणगुणगण-निलय, सौन्दर्य्यमाधुर्य्यलावण्यसुधासागर श्रीजानकीरमण की अहैतुकी अनुकम्पा से ही भगवदीयरसास्वादन में मनुष्य की प्रवृत्ति होती है। यह निर्विवाद सिद्ध है कि प्राणीमात्र आनन्द का अन्वेषण कररहा है, क्योंकि आनन्दसे ही इसकी उत्पत्ति हुई है, तथा अन्त में आनन्द को प्राप्त करने पर ही इसे शाश्वती शान्ति मिलेगी "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति" "उस प्रभु को जानने पर ही प्राणी अमृतत्व को पाता है" जब तक भगवत्प्रेम नहीं होगा, तबतक अनेक संशय रहेंगे, आत्मा अनात्मा की उलझी हुई ग्रन्थि नहीं सुलझेगी, तबतक शुभाशुभ

कर्मों का फलोदय होगा ही यथा—

'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे । मुण्डक०

अर्थात् सर्वोत्कृष्टब्रह्मादि भी जिससे छोटे हैं ऐसे प्रभु का दर्शन-समानाकार सदृश अपने हृदयकमल में उपासक जब ध्यान-भावना के द्वारा साक्षात्कार करता है तब ग्रन्थि के सदृश दुर्मोच इसके अन्तःकरण के राग द्वेष आदि नष्ट हो जाते हैं, प्रभु को जानने से ही सर्वविषयक ज्ञान होजाता है, अतः सर्व-विषयक संशयभी नष्ट हो जाता है तथा प्रारब्धातिरिक्त अनन्त-जन्मार्जित शुभाशुभकर्म भी क्षीण होजाता है, अर्थात् कर्मों में फलजनन शक्ति नहीं रहजाती। श्रीवेदव्यासजीने भी ब्रह्मसूत्र में तदधिगमाधिकरण में इस विषय पर विचार किया है तथा इसी प्रकार निर्णय किया है। अस्तु

भगवत्प्रेम ही सर्वव्यापी पूर्णानन्द है, जिसकी प्राप्ति के अनन्तर और कोई भी वस्तु प्राप्तव्य शेष नहीं रहती। श्रुति में भी भूमानन्द का वर्णन ऐसा ही आया है—

'यत्रनान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं योवै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम् ॥' (छान्दोग्य० ७।२४।१)

जिस परमसुखका अनुभव करनेपर मनुष्य दूसरे को नहीं देखता, दूसरे को नहीं सुनता, दूसरेको नहीं जानता वही भूमा है, और जिस सुख का अनुभव करने पर भी दूसरे को देखता है, दूसरे को सुनता है, दूसरे को जानता है वह अल्प है। जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है वह विनाशी है, इसीलिये प्रेम सदा मधुर, अविनाशी, सनातन तथा सत्य है।

इस प्रेमानन्दसिन्धु में नित्य निरन्तर गोता लगाने वाले महापुरुषों के साथ परम प्रेमास्पद प्रियतम प्रभु की जो प्रेम-लीलायें होती हैं वे तत्संवेद्य होने से अनिर्वचनीय है क्योंकि-

'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्'

(मुण्डक० ३।२।३)

जिस बड़भागी प्रेमी को प्रभु स्वीकार करते हैं उसके समक्ष अपना स्वरूप ही प्रकट करते हैं। प्रभु अनन्तरूपों से जगत के अनन्त कार्य करते हैं, किन्तु अनन्यप्रेमी उपासक को तो अपने मुक्तानुभाव्य रससारसर्वस्वस्वरूप को भी प्रकट करते हैं अतः श्रुति में "स्वां तनुं" कहा गया। फिर अपने सनातन प्रियतम को पाकर उस प्रेमी को जो रसानुभव होता है, वह तो—'सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना॥' के अनुसार अकथनीय है। इन्हीं महापुरुषों में से एक महापुरुष हमारे श्रीजानकीगीतकार, स्वामी श्रीहर्य्याचार्य्य-जी महाराज हुये हैं, जिनकी सूक्ति सुधा का समास्वादन कर आज भगवद्रसरसिक महानुभावगण अपनेको कृतार्थमानतेहैं।

जहां की रमणीयताने अपने अलौकिक पर्वतीयशोभा-समुदाय से स्वामीश्रीअनन्तानन्दाचार्यजी महाराज के मुख्य शिष्य योगिवर्य स्वामी श्रीकृष्णदासजी महाराज 'पयोहारी' (चिरञ्जीवी) जैसे महापुरुष का चित्त को आकृष्ट कर लिया, जहांसे श्रीअग्रस्वामी श्रीकीलस्वामी, जैसे श्रीवैष्णवाचार्य युगल-रत्न प्रकट होकर अनन्त चेतनों को भगवद्भक्तिसुधापान करा-कर अमर बना गये। जहां के सुप्रतिष्ठित पीठ पर श्रीभग-वद्गुणदर्पण, श्रीसुन्दरमणिसन्दर्भ, श्रीरामतत्वप्रकाश, श्रीमा-धुर्यकेलिकादम्बिनी आदि अनेक दिव्य प्रबन्धों के प्रणेता अनन्तशास्त्रनिष्णात स्वामीश्रीमधुराचार्य जैसे सुधीधौरेय प्रकट होकर स्वरचित अनेक दिव्यप्रबन्धों द्वारा शृङ्गाररस विरोधी कुयुक्तियों का खण्डन कर वैदिक प्रमाणों से मधुररस का मण्डन कर भावुकों को भरपूर निधि प्रदान किये। वहीं योगीन्द्र-नरेन्द्रादिवन्द्यमान पीठ श्रीगालवाश्रम (गलतागादी) जयपुर में स्वामीश्रीहर्य्याचार्यजी महाराज अपने गुरुदेवस्वामी श्रीमधुराचार्यजीके पश्चात् सुप्रतिष्ठित पीठपर विराजमान होकर अपनी अलौकिक विद्वत्ता रसिकता के द्वारा अनन्त चेतनोंको सुर-दुर्लभ भगवद्रस का समास्वादन करा गये॥ यद्यपि स्वामी श्री-हर्य्याचार्यजी का श्रीविग्रह सम्प्रति हम लोगों के चर्मचक्षुगोचर नहीं है, किन्तु उनका मधुररसाप्लावित हृदय का प्रत्यक्ष दर्शन इस ग्रन्थमें होता है। उनका अगाधपाण्डित्य, लोकोत्तर कवित्व शक्ति, एवं संगीत आदि की अलौकिक प्रतिभा का मनोरम

चित्रण इस ग्रन्थमें विद्यमान है। समग्र श्रीजानकीगीतका समास्वादनके पश्चात् भावुकों को स्वामी श्रीहर्य्याचार्यजी महाराज का रसग्राही विशाल हृदय का उदारोद्गार का अनुभव होगा।

श्रीजानकीगीत में आपने जिन रहस्यों का वर्णन किया है वे रहस्य इनके नित्य आस्वाद्य एवं सद्गुरु प्रदत्त निधि हैं।

इनके सद्गुरुदेव स्वामीश्रीमधुराचार्यजीने अपनी अहैतुकी अनुकम्पा से स्वकीय सर्व-सम्पत्ति इनको प्रदानकिया रसिकप्रकाश भक्तमालके टीकाकार लिखते हैं कि—

"हरियाचार्य शिष्य जो कृपा के पात्र मुख्य तिन्हैं,
आज्ञा जो जो दीनी सब कीनी अनुराग में।"

अर्थात् स्वामी श्रीमधुराचार्यजीने अपने मुख्य कृपापात्र शिष्य स्वामी श्रीहर्य्याचार्य जी को जैसी आज्ञा दी, आपने अनुराग पूर्वक उसका पालन किया।"

स्वामी श्रीहर्य्याचार्यजी का अपार पाण्डित्य, एवं लोकविलक्षण भावुकतासे ऐसा अनुमान होता है कि आपने अनेक रहस्यमय ग्रन्थोंका प्रणयन किया होगा, किन्तु इस समय आपके प्रणीत दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं एक 'श्रीजानकीगीत' तथा द्वितीय 'श्रीरामस्तवराजभाष्य' इन दोनों ही ग्रन्थों से अपार उपकार आज श्रीवैष्णवसम्प्रदाय का होरहा है, श्रीरामस्तवराज मुद्रित है किन्तु इस समय में अप्राप्य है श्रीअवधमें बहुत अन्वेषण करने पर मुझे एक प्रति स्वामी श्रीमणिरामजी की छावनी के

सन्तशिरोमणि, पूज्यपाद महान्त श्रीरामशोभादासजी महाराज के पास में मिली है, श्रीजानकीगीत में २३ पेजकी टिप्पणी में आवश्यक समझकर इसी पुस्तक से "मत्स्यकूर्मवराहादि रूप-धारिणमव्ययम्" इस पंक्ति का भाष्य भाषानुवाद के साथ दिया गया है, श्रीजानकीरमण की कृपासे गुरुजनों की आज्ञानुसार श्रीरामस्तवराजभाष्य भी भाषानुवाद के साथ प्रकाशित होकर आप सबके करकमलों में शीघ्र ही प्राप्त होगा ऐसी आशा है आगे प्रभु की जैसी इच्छा। स्वामी श्रीहरिदासजी का भाष्य श्रीरामस्तवराज पर है किन्तु विस्तार है, इन्होंने अपने भाष्य में स्वामी श्रीहर्य्याचार्य की चर्चा की है।

रसिकशिरोमणि स्वामी श्रीयुगलप्रियाजी महाराजने आपका चरित मूल छप्पय में इसप्रकार वर्णन किया है यथा—

हरियाचारय नीलपीतरंग हरित ध्यान लहि।
शैनकुञ्ज रासान्त सुरतिवर ग्रन्थमान कहि।
गुरु आज्ञा श्रीचित्रकूट ते पालन कीनी।
रामरास लीला रसाल रसिकन सुख दीनी।
मधुराचारय शिष्यवर कलियुग में त्रेता कियो।
षटऋतु नित्यविहार युत उत्सव करि बहु सुखदियो।

यहां नीलपीत रंग हरित ध्यानसे श्रीजानकीगीतके षष्ठसर्ग के द्वितीय श्लोकमें 'विद्युद्घनाङ्गौ घनविद्युदम्बरौ' जो महा-

रासके अन्त का ध्यान है इसी का संकेत है तथा मानलीला, महारास शैनकुञ्ज का दिव्यविहार आदि का वर्णन अपने ग्रंथ में किया यह 'अन्यमानकहि' यह दोअर्द्धाली तक श्रीजानकीगीत की ही प्रशंसा भक्तमालकार ने की है। इससे यह सूचित होता है कि पूर्व में श्रीजानकीगीत का आस्वादन भावुक महात्मागण अधिक करते थे क्योंकि भक्तमाल के टीकाकारने भी श्रीजानकी-गीत की प्रसिद्धि सूचित की है यथा—

'हर्याचार्य सात्विक उपासक प्रवरभये हरि सहचरी नाम ख्यात है पदनमे। नीलपीत रंग मिले होत जो हरित रंग वही ध्यान पगे पैठि रासके सदनमें। सुमिरन माला पद पादुका पैहारीजू की पूजि इष्ट सेवैं भावभरे स्वच्छ मनमें। रामरास रंगमान मोचन उपाय गीत गायो सोई छायो ठौर ठौर रसिकन में'

मानमोचन उपायगीत अर्थात् मानलीला से युक्त श्री जानकीगीत का निर्माण किया, यह ग्रन्थ रसिकमहात्माओं की मण्डली में ठौर २ गाया जाने लगा इससे सिद्ध हुआ कि पूर्वा-चार्योंने इस ग्रन्थरत्न का विशेष आदर किया।

वस्तुत: ग्रन्थकार ने भावुकों को अलौकिक सुखप्रदान के लिए ही इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है, ग्रन्थ के आरम्भ में ही

क्या ही सुन्दर श्लोक है—

भवति भोरसिका रघुनन्दने जनकजारमणे यदि मानसम्।
सरसकाव्यकलाश्रित सत्पदां हरिगिरं शृणुत तिमृदुं तदा ॥

अर्थात् हे रसिकगण ? यदि आप सबका मन मधुप श्री-जानकीरमण रघुनन्दनजू के सौन्दर्यमाधुर्य सौरभ का पान के लिये लालायित हो तब सरस काव्यकलाओं से सुसज्जित 'हरि' की वाणी को आप सब अवश्य श्रवण करें। इस ग्रन्थका अध्ययन गानके लिए ग्रन्थ के अन्तमें सन्तोंसे आपने प्रार्थना भी की है। क्या ही सुन्दर श्लोक है—

विद्याविभूषणयुतो हरिरब्जनाभपादारविन्दमधुपो यदिदं व्यधत्त। श्रीजानकीचरितगीतमुदग्रभावास्तत्साधवः प्रतिदिनं मुदिताः पिवन्तु ॥

अर्थात मैंने श्रीजानकीगीत की रचना केवल आप सब सन्तोंके लिये ही की है, अतः आप सब रसिकगण इस सुधाका प्रतिदिन पान करें और उत्कटप्रेम में विभोर होकर पान करें, कितना विशाल हृदय है ? कितनी अपार अनुकम्पा है ?

भला ? वसन्तऋतुमें विकसित नवकलिकायें अपने नवपराग सौरभसे जिस समय समस्त दिशाओंको सौरभान्वित करतीहैं उस समय रसलोलुप मधुपको रसपानके लिये क्या प्रार्थना करनी पड़ती ? रसरसिक भ्रमरतो कण्टकाकीर्ण पुष्पोंके मध्यमें प्रविष्ट

होकर भी मकरन्दका आस्वादन करता है। भगवान् भुवनभास्कर जिस समय अपनी अनन्त किरणों के साथ उदीयमान होकर समस्त संसार को आलोक प्रदान करते हैं, उस समय उनके अनन्य प्रेमी पुण्डरीक पटल को विकसित होने के लिये कोई सूचना नहीं देता, इसी प्रकार श्रीजानकीगीत ऐसे रससारसरोवरसमुद्भूत पङ्कज को विकसित होने पर स्वयं रसलोलुप, रसास्वादनतत्पर भावुकों के मनमधुपों को इसका मकरन्द पान के लिये प्रार्थना की क्या आवश्यकता ! यह तो श्रीग्रन्थकार के हृदय की विशालता का ही द्योतक है, हम आश्रितों पर ऐसी अपार अनुकम्पा करके चिरकालके लिये ऋणी बना गये।

वस्तुतः यही महापुरुषों की महत्ता है जोकि जिस परमसुख का अनुभव वे करते हैं, उसका वितरण करने के लिये उनकामन लालायित रहता है, वे संसारके प्राणीमात्रको भगवद्रसास्वादन करानेके लिये उत्सुक रहते हैं, अपने परमप्रेमास्पद प्यारेके समक्ष ये किसीभी लौकिक पारलौकिक वस्तुकी याचना नहीं करते, बस, अपनेप्यारेकी चाहमें अपनी चाहको मिलाये रहना एकमात्र इनका प्रयोजन होता है, अपने प्यारेका मङ्गल से ही अपना महामङ्गल मानते हैं, प्यारेके सुखमें ही अपना परमसुख मानते हैं, प्रियतम से पृथक कोई भी चेष्टायें नहीं होतीं। उस साँवलाने अपने लोकविलक्षण श्यामरङ्गमें इन प्रेमियोंको ऐसा रंगलिया है कि इन महापुरुषों के तन मन प्राण ही नहीं किन्तु समस्त संसार ही श्याममय दीखता है। चतुरशिरोमणि परम उल्लास में भरकर इनके

हृदय के कोने २ में कामनाओं को ढूंढता है, और इसलिए कि मैं इनकी यथेष्ट की पूर्ति करूं, किन्तु किसी कोने में कुछ नहीं पाता तब विवश होकर उस परमैकान्त हृदय में अपना दृढ़ आसन लगा लेता और सदा के लिए हृदयरमण हो जाता है।

इन महापुरुषों की जो भी रचनायें होती हैं वे प्राकृत कवियों के सदृश कोरी विद्वत्ता के बलपर नहीं होती किन्तु रसानुभव करते २ जब हृदय भर जाता और उछाल मारने लगता है उसी उछाल के कुछ कणमात्र ये उपलब्ध रचनायें हैं,

'भयेउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥
चलीसुभग कविता सरितासो। रामबिमल यश जलभरितासो'॥

की भांति हृदय सिन्धु से उमड़ कर प्रवाह चल पड़ता। पुनः इस प्रवाह में अवगाहन कर अनन्त प्राणी अपने सन्तप्त हृदय को शीतलकरते हैं। ऐसे परमोदार परमाचार्योंके विषयमें जितनी भी कृतज्ञता प्रकट की जाय, इनके उपकार के समक्ष सभी स्वल्प हैं। यदि उनके हृदय में चाह नाम की कोई वस्तु है तो वह यही है कि "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भागभवेत्॥ समस्त प्राणी सुखी हो जाय, सभी को शाश्वती शान्ति मिले, भगवद्भक्तिसुधा का समास्वादन सभी को हो, कोई भी दुखी न रहे, अखण्ड मङ्गल का भागी सब कोई बने।

तभी तो श्रीमद्भागवत मे भक्तराज श्रीप्रह्लादजी दयार्द्र चित्त होकर प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि:—

" स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां,
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षज,
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥

॥५॥१८॥६॥

नाथ ! विश्व का कल्याण हो ! दुष्टों की दुष्टता दूरहो ! उनकी बुद्धि शुद्ध हो ! सभी प्राणियों में परस्पर सद्भावनाहो ! सभी एक दूसरेका कल्याण का चिन्तन करें ! हमारा मन शुभ मार्ग में प्रवृत्त हो ! तथा हम सबकी बुद्धि निष्काम भाव से परम प्रेमास्पद प्रभु में प्रवेश करे

अहा ! कैसा सुन्दर भाव है, कितना विशाल हृदय है क्यों नहिं, जिनके निर्मल हृदय में प्रभु का निवास है उनका हृदय तो ऐसा होनाही चाहिये, भला हम असहाय जीवोंके लिये सन्तों के अतिरिक्त दूसरा सहायक कौन हो सकता है ?

हेतु रहित जगजुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी।

वेद-शास्त्रों में वारम्बार आग्रह पूर्वक यह कहा गया है कि आचार्यों की कृपा के विना कोई भी व्यक्ति भगवद्रस का आस्वादन नहीं कर सकता। 'आचार्यवान् पुरुषो वेद' (मुण्डक) अर्थात् आचार्यचरणों का आश्रयण करने वाला ही प्रभु को

जानता है। 'प्राप्यवरान्निबोधत' आचार्यों से भगवद् रहस्य को जानो।

स्वयं गीता में भगवान्ने अर्जुन से कहा है—

'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः॥

इस ज्ञान को तू तत्वदर्शी ज्ञानियों से सीख वे आत्म-स्वरूप साक्षात्कार किये हुये ज्ञानी जन प्रणाम करनेसे, जिज्ञासु भाव से प्रश्न करने से, तथा सेवा करने से तुझे उस गोप्यतम परमतत्व का उपदेश करेगें। रसिकाचार्यों ने भी रसराज की प्राप्ति के लिए यही आदेश दिया है।

"रसिकन की गति कथा कहानी संग लहै तो सरसे।
अग्र स्वामी रस रीति मिलन को युगलप्रिया जियतरसे।"

मैं स्वामी श्रीहर्याचार्यजी का जीवनचरित नहीं लिख रहा हूँ, आचार्य का विशद चरित का कौन वर्णन कर सकता है? श्रीभक्तमालमें भी सूत्ररूपसे ही वर्णन कियागया है, स्वामी श्रीमधुराचार्यजीने बारह वर्ष तक श्रीरामरास महोत्सव करनेका संकल्प किया, छठे वर्ष में उस रासोत्सवमें स्वामी श्रीकृष्णदास जी महाराज 'पयोहारी' (चिरञ्जीवी) का दर्शन हुआ।

यथा—'रामरास उत्सव संकल्प वर्ष द्वादश को अलीरूप भले ललीलाल को लड़ाये हैं। छठे रासमध्य श्रीपयहारी आप आये अली वेष सुखछाये लखि काहू नैन पाये हैं।'
(र० प्र० भक्तमाल)

श्रीजानकीगीत के मनोहर पदों का गान श्रीअवध में भावुक महात्माओं के समाज में सर्वदा होता था। शरदपूर्णिमा के रासोत्सव में पूज्यपाद श्रीअवधशरणजी महाराज श्रीकनक-भवन दरबार में 'नटति रघुनायको रामरसचत्वरे' इस पदका गान अवश्य करते थे, तथा पूज्यपाद कोठेपर श्रीमहाराजजी के समक्ष श्रीमहावीरदासजी 'संगीतरत्न' रासोत्सव में इस पद को गाते थे. इन महापुरुषों की अनुकम्पा से मैं भी श्रीजानकी-गीत के पदों को गाने लगा,

'रघुकुलकमलविभाकर सुखसागर हे।
निजजनमानसवास जय जय दाशरथे' ॥

इस पद को मैं मनोऽनुकूल लय में गाने लगा. मुझे इसका लय बहुतही प्रिय है, इसके अतिरिक्त

'जय जय जानकि रघुपतिदयिते०' 'मृदुल रसाल०'
'निर्मल मलयज०' 'क्रीड़ति रघुमणि०'
'नटति रघुनायको रामरसचत्वरे,

आदि पदों का गान मैं प्रायः नित्य करता था, कभी अपने स्थान श्रीसद्गुरुसदन में, कभी श्रीकनक-भवन में, कभी कोठेपर श्रीमहाराजी के समक्ष में, वस्तुतः वाद्योंके साथ मधुर-स्वर से आचार्यों के पद गान में तथा श्रवण में जो आनन्द का अनुभव होता है, वह आनन्द समाधि में भी दुर्लभ है क्योंकि समाधि में चित्त की वृत्तियों का निरोध करना पड़ता है जो कि

सर्व साधारण के लिये असाध्य है, किन्तु आचार्यप्रणीत पदों के गान में तथा श्रवण में अनायास मनोनिरोध हो जाता है, साथही पूर्वाचार्यों का विशाल हृदय का भी उपभोग होता है. इसीलिये शास्त्रों में भी पद सङ्कीर्तन की महिमा कही गई है नवधाभक्ति में भी 'सङ्कीर्तन भक्ति' एक भक्ति है, और भक्तियों की अपेक्षा सङ्कीर्तन भक्ति में यह विशेषता है कि मनको विषय चिन्तनका अवकाशही नहीं मिलता सभी कार्यों का प्रायः मुख्य आधार होता है श्रवण तथा कथन, यदि श्रवण में सदा विषयों की चर्चा आती रहे तथा वाणी से भी विषयों की बातें की जाय तो मन से भगवच्चिन्तन असम्भव ही समझना चाहिये। किन्तु यदि कान तथा-वचन सदा प्रभु के नाम-रूप-गुण-लीलादि के गाने में सुनने में लगे रहें तो मन तथा सभी इन्द्रियां स्वतः भगवत्परायण हो जायगीं। यह सङ्कीर्तन साधन काल में भी अनुष्ठेय है तथा प्रेमाभक्ति प्राप्त होने पर भी भक्त गण प्यारे के नाम-गुण-लीलाओं का कीर्तन प्रमत्त होकर करते हैं हां ? प्रेमा-भक्ति में कीर्तन की शैली अनोखी होती है जैसा कि श्रीमद्भाग-वत में कहा है :—

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्तउच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः॥

११।२।४०

अर्थात् इस प्रकार प्रभु के नाम-गुणों का कीर्तन करने से भक्त के हृदय में दृढ़ अनुराग उत्पन्न हो जाता है, तथा प्रेम के

कारण हृदय भर जाता है, कभी वह प्रेमी भक्त भक्तोंसे पराजित प्रभुको देखकर जोरों से हँसता है, कभी बहुत काल से प्यारे की उपेक्षा का स्मरण कर अधीर होकर रुदन करता है, कभी वियोग कातर होकर उच्चस्वर से हा प्राणवल्लभ ! ऐसा कह कर चिल्लाता है, उस प्रेमी के प्रेमपाश में बंधकर प्रेमास्पद उसके समक्ष आ जाता है तब वह प्रेमी कृत्य कृत्य होकर नृत्य करने लगता है, क्या ? ये सभी चेष्टायें लोगों को दिखाने के लिये दम्भ-पूर्ण होती हैं ? नहिं 'लोक वाह्यः' अर्थात् लोक की निन्दा स्तुति की चिन्ता को छोड़ कर विवश होकर ग्रहग्रहीत के सदृश ऐसा करता है।

वस्तुतः पूर्वाचार्यों के प्रणीतपदों में न जाने कौन सी विलक्षण शक्ति है जो कि गान करने के समय रस की अपार वर्षा हो जाती है, वस्तुतः आचार्यों ने अपने प्रेमास्पद के साथ ध्यान भावना में जो लीलायें देखी है अथवा प्रत्यक्षरूप से की है, वही प्रबन्धोंमें वर्णित है, इसीलिये गानके समय वे लीलायें साकाररूप से प्रत्यक्ष दीखने लगती हैं। चाहे पञ्चरसों में किसी भी रस का उपासक हो, किन्तु अपने रसानुकूल पदों के गान से रस की वृद्धि अवश्य होतीहै, फिर रसराज के उपासकों के लिये तो महावाणी का गान नित्य नियम से करना चाहिये, पूर्वाचार्यों की युगलउपासना की यही रीति थी, कि वे लोग पदों के द्वारा ही मानससेवा तथा बाह्यसेवा करते थे। उपा-सना का यह प्रधान अङ्ग है इसीलिये पूज्यपाद परमाचार्य

श्रीकरुणासिन्धुजी महाराजने श्रीयुगलप्रियाजी से चौंसठ भक्ति के अङ्गों का उपदेश करते हुये यह कहा कि—

"श्रीअग्रस्वामी आदि के प्रबन्ध गान समय सम।
स्वयं नृत्यगान सन्ध्यावन्दन ज्यों कीजिये ॥"

(र०प० भक्तमाल)

अर्थात् श्रीअग्रस्वामी आदि पूर्वाचार्यों के प्रबन्धों का गान षटऋतु-बिहार के अनुकूल करे, तथा स्वयं नृत्य गान सन्ध्याबन्दन के सदृश नित्य नियम से करे, वेद में कहा गया है कि "अहरहः सन्ध्यामुपासीत" प्रतिदिन सन्ध्योपासना करनी चाहिये, यहां तक मनुजी ने कहा है कि—

"नानुतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् वहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥"

अर्थात् "जो ब्राह्मण प्रातः सन्ध्या तथा सायङ्काल की सन्ध्या नहीं करता है, उसको सभी ब्राह्मण सम्बन्धी कर्मों से शूद्र के सदृश वहिष्कृत कर दे" इसीप्रकार यदि भावुकगण नित्यनियम से प्रबन्धों का गान नहीं करते हैं तो रस से च्युत हो जाते हैं अर्थात् महावाणी के गान के बिना रस की अभिवृद्धि नहीं होती।

वर्तमान काल में श्रीमहावाणी का आस्वादन करने कराने का अधिक श्रेय कोठे पर अनन्त श्रीमहाराजजी को है, मुझे तो स्मरण है कि मैं ३ बजे दिन में बैठता था कुछ ऐका-

न्तिक सत्सङ्ग के पश्चात् जब श्रीमहावाणी का गान आरम्भ करता तब ६ बजे तक अखण्डरूप से गान करने के पश्चात् शैन आरती होती थी। इस प्रकार का नियम बहुत दिनों तक चला श्रीमहाराजजी नित्यप्रति नवीन२ ग्रंथों का गान करने के लिए आज्ञा देते थे, तथा मुझसे गान करवाते थे, श्रीजानकी-गीत गान करते २ प्रायः समग्र मुझे कण्ठस्थ हो गया, तथा 'रसमालिका' का पांच अवकाश कोठेपर नित्यगाने सेही कण्ठ-स्थहो गया, श्रीरसमालिकाका गान महोत्सव कई बार श्रीमहाराजजी ने करवाया, तथा भावुकों को अपूर्व सुख मिलता था।

अनन्त श्रीसम्पन्न स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजी महाराज प्रणीत "श्रीयुगलबिनोद बिलास" का गान-महोत्सव भी श्रीमहाराजजी ने कई बार करवाया, जिसमें एकबार तो अलौकिक आनन्द की वर्षा हुई थी। जिस समय श्रीमहाराजजी के श्रीचरणों के परमानुरागी, तथा मेरे अभिन्नहृदय, श्रीरामदुलारीशरणजी महाराजने अपनी काकली स्वर से गान किया था, प्रायः एक पक्ष में गान महोत्सव सम्पन्न हुआ था, उस बार श्रीमहाराजजी प्रतिदिन विह्वल हो जाते थे तथा प्रेमाश्रुओं से श्रीमहाराजजी का वस्त्र गीला हो जाता था। इस वर्ष भी बसन्त पञ्चमी के पूर्व से ही होली महोत्सव मनाया जारहा है लोक विलक्षण गायकगण मधुर स्वर से श्रीमहावाणी का गान कर रहे हैं। श्रीमहाराजजीके श्रीचरणों के सत्संग में जो निधि मुझे मिली है वह मैं ही जानता हूँ, इसके लिये श्रीमहाराजजी

के समक्ष कृतज्ञता प्रकट करता हुआ भी अनन्तकाल तक ऋणी रहूँगा। प्रतिवर्ष रसिकाचार्य श्रीअग्रस्वामीजी की जयन्ती फाल्गुन शुक्ल द्वितीया को श्रीमदारजजी के कुञ्ज में समारोह के साथ मनाया जाता है इस वर्ष भी फा० शु० द्वितीया को समारोह से उत्सव मनाया जा रहा है। हर्ष का विषय है कि श्रीजानकीगीत का प्रकाशन तिथि भी यही है। परमाचार्य श्रीअग्रस्वामीजी ने अपनी जयन्ती की तिथि में ही श्रीजानकीगीत का प्रकाशन कराया, इसलिये मुझे बड़ी प्रसन्नता है।

श्रीजानकीगीत का प्रकाशन के लिये कई महात्माओं ने मुझसे कहा किंतु श्रीभरतशरणजी ने विशेषआग्रह मुझसे किया पहले तो उन्होंने श्रीजानकीगीत की एक प्रति मूल मेरे पास लाई जिसमें मूल ग्रन्थ का शब्दार्थ था कुछ वर्ष पूर्व अनन्त श्री-विभूषित पं० श्रीअखिलेश्वरदासजी महाराज ने जयपुर मन्दिर में श्रीजानकीगीत का प्रवचन किया था। उसी प्रवचन के आधार पर वहां के परमरसज्ञ श्रीमहान्त श्रीराजकिशोरीवरशरणजी महाराजने मूल ग्रन्थ का अर्थ लिख लिया श्रीभरतशरणजी-ने वही कांपी मेरे पास लाई मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, मूल ग्रन्थ का बड़ा ही सुन्दर अर्थ था, प्रोफेसर साहब ने मुझसे कहाकि इसी का आप संशोधन करदें, मैंने सहर्ष स्वीकार किया, तथा कुछ संशोधन भी किया किन्तु समग्र ग्रन्थ का संशोधन मैं नहीं कर सका, बीचमें ही फाल्गुनमें श्रीमिथिलाजीकी परिक्रमा

में मैं चला गया तथा वहां से लौट कर श्रावण में श्रीअवध आया। तब पुनः प्रोफेसर श्रीभरतशरणजीने मुझसे आग्रह किया, तथा भाष्य की टीका लिखने के लिये आग्रह किया 'सभी सन्तों की यह आज्ञा हुई की भाष्य के सहित प्रकाशन होने पर ही श्रीजानकीगीत का यथार्थ आस्वादन होगा, अतः भाष्य-तथा भाष्यानुवाद के साथ यह ग्रन्थरत्न का प्रकाशन हो'। सभी गुरुजनों की आज्ञा सुनकर टीका करने की योग्यता अपने में न देख कर भी मैं विवश हो गया, तथा 'गुरु पितु मातु स्वामि शिख पाले। चले कुमग मग परहिं न खाले' इस सूक्तिके अनुसार टीका लिखने के लिये स्वीकार किया, तथा श्रीजानकीरमणजू की कृपा से यथामति प्रयास किया, जैसा श्रीराजकिशोरीजू ने लिखवाया वैसा मैंने लिख दिया। यह तो निश्चय है कि इतने बड़े ग्रन्थ रत्न की टीका करना, मेरे जैसे अल्पज्ञ के लिये परिहास का विषय है, किन्तु मेरे लिये सौभाग्य है क्योंकि इसीके बहाने मुझे श्रीजानकीगीत का परिशीलन करने का अवसर प्राप्त हुआ।

मूल श्लोकों का तथा पदों का शब्दार्थ के साथ भाष्यका अनुवाद मैंने किया है। मूल श्लोकों का तथा पदों का अर्थ भी भाष्य के आधार परहीं किया गया है, भाष्य का अनुवाद भी अधिक विस्तार नहीं किया गया है, किन्तु जहां तक भावों को विशद करने का प्रयत्न अवश्य किया गया है। कहीं २ प्रसङ्ग-वशात् ग्रन्थ के तात्पर्यों को परिस्फुटित करने के लिये पूर्वाचार्यों

के पद एवं श्लोक भी टिप्पणी मे दिये गये हैं टिप्पणी का संकेत भी उन स्थलों में कहीं फूल, कहीं एक दो का अंक के द्वारा दिया गया है । टीका में यदि कहीं स्वतन्त्र भाव है, तो वह प्राय: कोष्ठ में है जल बिहार के प्रसङ्ग में प्राय: दो पेज 'श्रीयुगल विनोद' की मनोहर पंक्तिया देदी गईहैं, तथा 'श्रीरस-मालिका' के पद टिप्पणी में हैं, तथा परिशिष्ट भाग में आचार्यों के रास, होरी, चैता, फूल बँगला, झूलन आदि के पद दिये गये हैं, जो इस ग्रन्थ का अनुपम शृङ्गार है, तथा पाठकों के हृदय में रस-सञ्चार करने में प्रधान सहायक होगा । परिशिष्ट में पहले मैंने केवल रास का ही पद दिया था, किन्तु स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी महाराज की जयन्तीमें मेरे आग्रह से बड़हिया के श्रीरामाश्रयबाबू श्रीअवध आये इनसे मुझे अधिक स्नेह है, उन्होंने कहा कि आप पद छपने में संकोच नहीं करे, सभी उत्सव के पद दिये जायँ, मैंने वैसाही किया । इस ग्रन्थका प्रकाशन में इनका आर्थिक सहयोग भी है इसलिये बाबू श्री रामाश्रय प्र० सिंह जी को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ ।

भाषानुवाद में यदि कहीं सरसता हो तो उसका श्रेय पूज्यपाद श्री भाष्यकार को है, तथा उन गुरुजनों को है, जिनकी कृपा से इस दीन को कण मात्र प्रसाद मिला है, और जहां कठोरता हो, वह मेरे नीरस हृदयका परिणाम है अत: रसग्राही पाठक गण मेरी कठोरता पर नहीं ध्यान देकर ग्रन्थकार तथा भाष्यकार की सरसता काही समास्वादन करेंगे ।

मैं इसके लिये श्रीभरतशरणजी को हृदय से धन्यवाद देता हूं जो कि मुझ जैसे आलसी से आपने टीका लिखवायी। इस ग्रन्थका प्रकाशन में जिन्होंने द्रव्यकी मूक सेवा की है, उनका मैं कृतज्ञ हूँ। तथा श्रीभरतशरणजीने आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया है एतदर्थ इन्हें कोटिशः धन्यवाद है।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन में प्रूफ संशोधन आदि कार्य भार भी मेरे ही ऊपर आया, समयाभाव होने पर भी मैंने नित्य नियमों को शिथिल कर यथाशक्ति इस कार्य का सम्पादन किया, कभी २ तो मैं कथाप्रवचन के समय में प्रेस की ओर जाता था, तथा मेरे श्रोतागण छावनीकी ओर कथाश्रवणके लिये आते थे, मार्ग में शीघ्रता से उधर जाते देखकर वे लोग आश्चर्य चकित होकर मुझसे पूछते थे कि कथा प्रवचन के समय आप कहां जा रहेहैं? मैं संकुचित होकर उनको उत्तर देता कि आर्डर देने के लिये प्रेस जा रहा हूँ। इतने पर भी कुछ अशुद्धियां रह गई हैं इसके लिये शुद्धिपत्र देदिया गया है पाठक शुद्ध करके ही ग्रन्थ को पढ़ेंगे।

इस ग्रन्थ में एक शब्द का भी जिनसे सहयोग मिला हो उन सभीका तथा पूज्य विद्यागुरुओंका मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

अन्त में श्रीमैथिलीप्राणवल्लभपादारविन्दमकरन्दमधुपायमानमानस गुरूजनों से तथा भक्तोंसे इस दीन हीन कंगाल की एकमात्र यही याचना है कि

'सीताराम चरण रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे'

श्रुति में ब्रह्म को रसस्वरूप कहा गया है, यथा 'रसो वै सः' अर्थात् वह ब्रह्म रसस्वरूप है. 'रसंह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति' उस रस को प्राप्त करने पर ही उपासक परमानन्दसिन्धु में निमग्न होता है इत्यादि

जिनलोगोंने श्रुति स्मृति, पुराण, इतिहास, संहिता सच्छास्त्र आदि का अध्ययन श्रवण नहीं किया है, तथा श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ परमोपासक सन्तों की चरण धूलि से अपने को परम-पवित्र नहीं किया है, अतः ऐसेलोग केवल श्रुतिविरुद्ध तर्कोंसे मधुरभाव के प्रति आक्षेप करते हैं उन पण्डितमानी महानुभावों से मुझे कुछ भी नहीं कहना है, मैं तो उन भावुकों से कुछ निवेदन करता हूँ जो कि परमार्थपथ पर आरूढ़ होकर अपने प्यारे की खोजमें हैं जिनका हृदय प्यारे से मिलने के लिये व्याकुल है जो प्यारे को सर्वतोभाव से अपने को समर्पण करना चाहते हैं जो प्रभु को अपना परमप्रेमास्पद प्राणवल्लभ बनना चाहते हैं उन्हीं बड़भागियों के लिये श्रुति-स्मृति प्रतिपादित, सर्वोत्कृष्ट मधुरभाव है। जबतक अपने प्रेमास्पदके साथ संकोच है भय है, तबतक पूर्णरूप से प्रेमरस का आस्वाद्य नहीं होता, मधुरभाव के अतिरिक्त जितने भाव हैं वे सभी चिन्मय हैं, उत्कृष्ट हैं, किन्तु कुछ न कुछ सङ्कोच, भय, सभी रसों में रहता ही है, भला ? प्रतिप्राणा नायिका अपने एक मात्र प्राण-वल्लभ पतिदेव से कहां तक संकोच करेगी ? भय संकोच नामकी वस्तु को तो वह जानती ही नहीं. अपने प्यारे को सुख पहुँचाने के लिये वह सब कुछ करने को तैयार रहती है इसीलिये तो श्रीअग्रस्वामीजी ने कहा कि—

'रस शृङ्गार अनूप है, तूलबे को कोउ नाहिं ।'

मधुरभाव के विषय में विशेष जानकारी के लिये — 'श्रीसुन्दरमणिसन्दर्भ' 'श्रीरामतत्व प्रकाश' 'श्रीरामस्तवराज-भाष्य' आदि ग्रन्थों को देखना चाहिये।

श्रीजानकीगीतकी मूलप्रतियां तो श्रीअवध-मिथिला आदि में कई हैं किन्तु भाष्यके सहित मुझे तीन प्रतियां मिलीं, एकप्रति श्रीलक्ष्मणकिला के रसिकशिरोमणि स्वामी श्रीयुगलानन्यशरण-जी महाराजके "सरस्वती भण्डार" में मिली। एकप्रति पूज्यपाद (स्वामी श्रीरामकिशोरशरणजी महाराज) श्रीहनुमतनिवास कोठेरर के पुस्तकालय में मिली, एक प्रति परमा-चार्य स्वामीश्रीकरुणासिन्धुजीमहाराज के स्थान श्रीजानकी-घाट में पूज्यपाद श्रीअवधशरणजी के द्वारा मिली, मूल श्री-जानकीगीत का पाठ में तो मुझे अथवा किसी को सन्देह नहीं है क्योंकि मूल ग्रन्थ बहुत व्यापक हो चुका है। प्राय: सभी विशिष्टसन्तों के पास में हैं। उपर्युक्त प्राचीन प्रतियों से केवल भाष्य का पाठ को मैंने मिलाया, किन्तु सभी प्रतियों में एक-सा ही पाठ था, केवल लेखक की असावधानी से व्याकरण सम्बन्धी कुछ अक्षर यत्र तत्र छूट गये हैं मिलाने से वह सम्पन्न हो गया। यद्यपि प्राचीन प्रतियां सभी विशुद्ध मिलीं तथा कुछ व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियोंका संशोधन यथामति मैंने किया, तथापि अपना संशोधन से मुझको स्वयं सन्तोष नहीं हुआ, क्योंकि भाष्य में भाष्यकार का अपार पाण्डित्य का अनुपम चित्रण है, मेरे ऐसे अल्पज्ञ के लिये भाष्य का संशोधन सर्वथा दुर्गम था, मेरी अभिलाषा थी कि इस ग्रन्थ का अवलोकन एक-

बार कोई विशिष्ट विद्वान् कर लेते, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, अन्त में श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के अद्वितीयविद्वान्, निखिल शास्त्रनिष्णात, दार्शनिकसार्वभौम स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य-जी महाराज, व्या० न्या० वेदान्त मीमांसाचार्यजी से मैंने प्रार्थना की आपने मेरी प्रार्थना को स्वीकार की तथा एकबार भाष्य के सहित समग्र श्रीजानकीगीत का अवलोकन किया, तथा भाष्यकारकी विद्वत्ता, भावुकता की प्रशंसा करते हुये अवशिष्ट त्रुटियों का संशोधन किया। तथा इस ग्रन्थ का प्रकाशन में सहानुभूति प्रकट की, एतदर्थ मैं श्रीमहाराजजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं, इस अबोधशिशु के प्रति आपका अपार वात्सल्य है, श्रीचरणोंकी सन्निधि में रहकर मैंने वेदान्त तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थों का श्रवण किया है तथा अद्यावधि यथावकाश श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

निखिलशास्त्रपारङ्गत पूज्यपाद श्रीवेदान्तीजी महाराज इस ग्रन्थ का अवलोकन कर अतिप्रसन्न हुये, तथा अपने हृदय का उद्गार को आपने संस्कृत में लिखकर दिया अतः श्रीमहाराज जी का मैं कृतज्ञ हूँ।

मैं तो श्रीजानकीरमणजू से सदैव यही प्रार्थना करता हूँ कि इन महापुरुषों के करकमलों की शीतलछाया मेरे शिरके ऊपर सर्वदा बना रहे।

❀ अब मोहि चन्द्रकलाजू की आशा ❀

जनकललीजू की मुख्यसहेली विहरत सकल विलासा।
चौरसी भ्रम फन्दछुड़ाय के रसिकन संग दियो वासा॥
श्रीयुगलप्रिया अब नहिं कछु संशय विपिनप्रमोद निवासा

दीन सीतारामशरण

❀ श्रीमन्मैथिलीप्राणवल्लभो विजयतेतराम् ❀

❀ अथ श्रीजानकीगीतम् ❀

श्रीग्रन्थकारकृतमङ्गलाचरणम्—

नवरागभराञ्चितात्मवृत्ते:,
सरयूकुञ्जगृहेषु राघवस्य।
जनकात्मजयासमं समन्ताद्,
विजयन्ते रतिकेलयोऽनवद्याः॥१॥

अर्थ—नित्य नूतन प्रियानुराग भार से सत्कृत चित्तवृत्ति वाले श्रीराघवजू की श्री जनकराजनन्दिनी जू के साथ श्रीसरयू कुञ्ज गृहों में होने वाली निर्दोष श्रीसच्चिदानन्दमयी केलियां निरन्तर विजय को प्राप्त हों।

भाष्यम्—

श्रीभाष्यकारकृतमङ्गलाचरणम्—

साम्राज्यमर्पयति भक्तिलवेप्युदग्रं-
प्रेम्णा प्रदर्शयतिपादसरोजशोभाम्।
विघ्नान्निवारयति या भजतां समन्तात्-
सा जानकी विजयते कुलदैवतन्नः॥१॥

अर्थ—जो भक्ति लेश होने पर भी बिपुल साम्राज्य अर्पण करती हैं, तथा प्रेम करने पर स्वकीय पादारविन्द लावण्य का साक्षात्कार प्रदान करती हैं। एवं भजन करने वालों को स्वप्राप्ति विरोधी निखिल विघ्नों को हटाती हैं वह हम सब की कुलदेवता श्रीजनकराजनन्दिनीजू निरन्तर विजय को प्राप्त हों।

भाष्यकार ने इस श्लोक से उपासकों को श्रीमैथिलीजू की उपासना से अनिष्ट निबृत्ति पूर्वक इष्ट प्राप्ति होना तथा अपने को श्रीप्रियानुरागी सूचित किया है।

विद्युच्चमत्कृतिमवाप निरीक्ष्य कान्ति-
क्षोभं करीन्द्रनिकरो गतिमाकलय्य।
यस्याः विलोक्य वदनं परितापमिन्दुः
सा जानकी रघुपतेर्मुदमातनोति ॥ २ ॥

अर्थ—जिनकी अलौकिक छबि देख कर दामिनी ने बिलक्षण चमत्कार (चकाचौंध) प्राप्त किया है। जिनकी मन्द गति देख गजराज समूह क्षुब्ध हो जाता है। तथा जिनके वदन सौन्दर्य देख कर चन्द्रमा सन्ताप को प्राप्त हो जाता है। वे श्रीजनकराजनन्दिनीजू अपने प्राणवल्लभ श्रीरघुनन्दजू को निरन्तर (अङ्कमाल, कटाक्ष मन्दहासादि से) आनन्द का विस्तार करती हैं।

भाव यह है कि गजराज को अपनी मन्दगति का बड़ा गर्व था उसने जब आपकी गति को देखा, तब वह विगत गर्व

होकर क्षुब्ध हो गया तथा चन्द्रमा अपने सौन्दर्याभिमान से ऊपर आकाश में रहकर सबको अपनी शोभा के नीचे मानता था किन्तु उसने जब श्रीराजकिशोरी जू को श्री विग्रह की शोभा देखी तब वह अपने से अनन्त गुण अधिक देखकर महान् परिताप युक्त होगया।

भाष्यम्--अथ सोऽयं कबिनिचय-चूड़ामणिः, श्रीमान् हरिराचार्यः श्रीजानकीरमणरहस्यमकरन्दनिभृतहृदयारविन्दः सद्हृदयभक्तजनाभ्यर्थनपरवशः स्ववाङ्माधुरीपरिषेचितैः कवित्वैः सुगोप्यमपि तद्रहस्यं प्रबध्नन् तदुत्कर्षरूपं मङ्गलमाचरति नवरागेति-जनकात्मजया-समं राघवस्य रति केलयः समन्तात् विजयन्त इत्यनुषङ्गः क्व-सरयूकुञ्जगृहेषु सरय्वाः कुञ्जगृहेष्विति सम्बन्धमात्रनिर्देशात् तटीं वाटीं चाधिकृत्येतिबोध्याः। समन्तात्-इति तेषु सामस्त्यसंचाराभासात् केलीनां सातत्यमतिचारूत्वञ्च ध्वनितमतो विजयन्त इति।

अर्थ—यह वही कवि कुल शिरोमणि श्रीहर्य्याचार्यजी महराज हैं। जिनका हृदय कमल श्रीप्रियाप्रियतमजू के रहस्य रूपी मकरन्द से परिपूर्ण है। परम रसिक भक्तों के प्रार्थना परवश अपनी वचन माधुरी से सिञ्चित कविताओं द्वारा दिव्यदम्पती

के नितान्त गोपनीय रहस्यों को दिव्य प्रबन्धों में बर्णन करते हुए, उन रहस्यों के उत्कर्ष के लिये मंगलाचरण करते हैं।

"नवराग" इस श्लोक से—श्रीजनकराजनन्दिनीजू के साथ श्रीचक्रवर्तीन्द्रनन्दनजू के रतिकेलिसमूह सर्वत्र निरन्तर विजय को प्राप्त हो यह-वाक्यार्थ है। कहां! इस अपेक्षापर कहते हैं-श्री सरयू जी के कुञ्जगृहों में-इस प्रकार सम्बन्धमात्र कहा गयाहै इससे श्री सरयूतट एवं श्रीअशोक वन तमालवन आदि द्वादश वनों तथा उपवनों में भी विहार समझना चाहिये। समन्तात् इस पद से उक्त विहार स्थलों में सर्वत्र श्रीप्रियाप्रियतम विहरते हैं, ऐसा अभिप्रेत है। और केलियों का सतत काल होना तथा उनकी कमनीयता भी ध्वनित है। अतः विजय को प्राप्त हों (अर्थात् निरन्तर दिव्य केलियां अभिबृद्धि को प्राप्त हों।

जयतिरत्राकर्मकः सर्वोत्कर्षवचनः 'पराभिभूता-वुत्कर्षेजयिरन्तेत्वकर्मकः, इत्युक्तेः सर्वोत्कर्षाश्रयत्वात् सर्वनतिराक्षिप्यते। स्वस्यापि सर्वान्तःपातात् साव्यज्यते सर्वनमस्यास्ताः केलयो मया वन्दिताः विघ्नान्निवारय-न्त्वितिभावः॥ एतेन शिष्टव्यवहारोऽपिनिर्दिष्टः ग्रन्थादौ शिष्टाः मङ्गलमाचरन्ति यदुक्तं दण्डिना 'आशीर्नमस्क्रि-या वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखमिति, राघवस्य कीदृशस्ये-

त्यपेक्षायां विशिनष्टिनवेति–नवो नित्यनूतनोयो रागभरः प्रेमातिशयस्तेनाश्चिता सत्कृता चित्तवृत्तिर्यस्य तथा भूतस्येति चित्तवृत्तौ जानकीविषयस्नेहभरभज्यमानतया-स्वपुमर्थमौलित्वमननादिति भावः' कीदृश्यः केलयः अनवद्याः द्वयोर्निर्हेतुक प्रवृत्त्या निर्दोषा इत्यर्थः ।

अर्थ—विजयन्ते-यह क्रिया जि-जये इस धातु से निष्पन्न होती है। जि-धातु यहां अकर्मक है (जि-धातु के दो अर्थ हैं पराजय तथा उत्कर्ष, पराजय अर्थ में सकर्मक तथा उत्कर्ष अर्थ में अकर्मक हो जाता है ऐसा शास्त्र का नियम है) अतः इसे सर्वोत्कर्ष बचन समझना चाहिए। समस्त उत्कर्षों का आश्रय होने से केलिके अतिरिक्त समस्त नमस्कारों का इसी में अन्तर्भाव है। (भाव यह है कि मधुररसोपासकों को श्रीप्रियाप्रियतम जू की दिव्य केलिके अतिरिक्त बन्दनीय शेष नहीं रहता) केवल युगल विहार की बन्दना से ही सर्व बन्दनायें हो जाती हैं। यथा श्रीरसमालिकायाम्-सब कीन्हें वह नाहिं वाहि कीन्हें सब तोषै-मूल सींचि सब डार बदन इन्द्रिन ज्यों पोषै (श्री-करुणासिन्धु जी]

—अपने को सभी के अन्तर्यामि होने से सर्वाश्रय सूचित होती है सभी से वन्दनीय जो केलि है उसी की मैंने वन्दना की है ये केलियां विघ्नों को निवारण करें यह भाव है। इससे ग्रन्थकारने शिष्टाचार दिखलाया क्योंकि ग्रन्थके आरम्भमें

शिष्टगण मङ्गलाचरण करते हैं। जैसा कि दण्डी कविने कहा है कि 'आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक तीन प्रकार के मङ्गल होते हैं। इन्हीं मङ्गलों को सामने रखकर ग्रन्थ रचना होती है। कैसे श्रीराघव जू हैं ऐसी आकांक्षा में विशेषण देते हैं कि जिनकी चित्तबृत्ति नित्य नूतन रागभर प्रेमातिशय से अञ्चित (सत्कृत) रहती है श्री प्रियतम जू की चित्तबृत्ति श्रीप्राणवल्लभ जू के प्रति जो स्नेह है उसके भार से भरी रहती हैं अर्थात् श्री प्रिया जू के आधीन रहते हैं।

अर्थात्-प्रियाप्रेमपरतन्त्र होने से अपने को रसिकशिरोमणि मानते हैं यह भाव है❀। कैसी केलियां हैं-अनवद्य हैं अर्थात् दोनों दिव्यदम्पती के विहारमें निर्हेतुक प्रबृत्ति होने से निर्दोष हैं

अयं भावः श्रीरामः खलु सर्वेश्वरः स्वरूपतो गुणतश्च ज्ञानानन्दात्मा श्रीसीता चाह्लादिनी नाम तन्नित्यशक्तिः

❀हमारे माई जनकलली जू के राज। जाके रसवश भये रघुनन्दन रसिकन के सिरताज ॥ १ ॥ पाटी पारत मांग सँवारत अलक कपोलन मांज। जीवनजरी भरी सब रस सों करि हिय हार ललाजु ॥ २ ॥ रचि रचि आभूषण पहिरावत छाडिदई कुल-लाज। सदा अधीन रहत हैं सीयके गई सकुच सब भाज ॥ ३ ॥ सीय-जानी रानी महारानी निरखत करतलमाल। मुखमयंक निरखत हैं छिन छिन भये चकोर के राज ॥ ४ ॥ रास समय नाचत प्रिय आगे गावत बाजत साज ॥ श्रीप्रियासखी के सीय स्वामिनीके लाल करत सबकाज

तयोर्मिथः प्रसंगो हेत्वन्तरविहीनो भवतु युक्तः आनन्द-साधने प्रवृत्तिर्हि सहेतुका आनन्देतु निर्हेतुकासेति सर्वाभ्यु-पगतम् 'अर्ध मात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः, सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुरित्यादि, श्रुतिस्मृतिभ्यः आह्लादरूपत्वं लक्ष्म्याः स्मृतम् । 'ह्लादिनी, संधिनी,संवित्त्वय्येके सर्वसं-श्रये, ह्लाद तापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते—इति अतस्तन्निरवद्याः इति । अत्र लट् प्रयोगः केलीनां नित्यत्वात् परत्र तु तदावेशेन साक्षादिव परिस्फुर्तेरिति ज्ञेयम् माला-भरणी नामकं छन्दः १ ।

अर्थ—भाव यह है कि श्रीरघुनन्दन जू सर्वेश्वर हैं स्व-रूप से तथा गुण से ज्ञानानन्दात्मा हैं। ("अर्थात् ज्ञान स्वरूप तथा ज्ञान गुण वाले भी हैं") श्रीराम तापनी में प्रणव के अर्थ स्वरूप तीनों भ्राताओं के सहित श्रीरामभद्रजू की व्याख्या करती हुई श्रुति कहती है कि प्रणव गत अर्ध मात्रा का अर्थ श्री रामभद्र जू हैं तथा ब्रह्मानन्द के विग्रह रूप हैं तथा श्रीवाल्मी-कीय रामायण में श्रीब्रह्मा जी कहते हैं कि आप विष्णु हैं तथा श्रीमैथिलीजू लक्ष्मी हैं (अर्थात् इन सबके कारण हैं।

यह श्रुति—स्मृतियों से आह्लाद रूपत्व (रूपता) श्री मैथिली जू की कही गयी हैं। १ ह्लादिनी, संधिनी संवित् यह तीनों

१-आह्लादिनीं हरेः कांक्षच्छक्तिं सात्वतसेविताम् (अगस्त्यसं०)

शक्तियां आप ही में हैं क्योंकि सभी के आप आश्रय भूत हैं। ह्लाद (लौकिकसुख) तापकरी (तामसी) दोनों मिश्रित शक्तियां आप में नहीं हैं क्योंकि प्राकृत गुण वर्जित आप हैं। इसलिए इन दोनों की दिव्य केलियां निर्दोष हैं। यहां पर लट् का प्रयोग केलियों का नित्यत्व द्योतनार्थ है। अथवा भावावेश में साक्षात्कारवत् प्रतीति होने से लट् का प्रयोग समझना चाहिए। इस श्लोक में मालभरणी नामका छन्द है।

साहित्यदिव्यदरविन्दमरन्दमत्त,
चित्तद्विरेफपतिरम्बुजनेत्रसक्तः।
श्रीजानकीरघुवरप्रथितां सुकेलि-
माधुर्य्यं मंजुलपदां हरिरातनोति। १।

इसमें आह्लादिनी स्पष्ट रूप से कहा गया है। श्रीराजकिशोरीजू श्री रघुनन्दन जू को आह्लाद प्रदान करती है इसमें श्रुति भी प्रमाण है—

यथा—हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः ॥ २ ॥
(रा० ता० पू०)

अर्थात स्वर्ण की कान्ति के सदृश गौरविग्रहवाली, सर्व अलङ्कारों से अलंकृत चिद्रूपा द्विभुज कमलधारणकरनेवाली श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी जू से आलिङ्गित श्रीकौशल्यानन्दन श्रीरामभद्रजू श्रीप्रियाजू के आलिङ्गनजन्य आनन्द से पुष्ट हैं।

अर्थ—साहित्य शास्त्र रूपी विकसित कमल का रस आस्वादन से प्रमत्त चित्तवाले मधुपराज तथा श्रीप्रियाप्रियतम-पादानुरागी स्वामी श्रीहरिआचार्यजी महाराज श्रीजानकीरमण-जू की विख्यात दिव्य केलि को मधुर तथा कोमल पदों से विस्तार करते हैं।

भाष्यम्—रहस्यकेलिनिरूपकः प्रबन्धः खलु साहित्यार्थबोधात्तदुपासनाच्च विना नसंभवेदतस्तदुभयसम्पत्तिं दर्शयति साहित्येति—साहित्यं काव्यनिरूपकं शास्त्रं तदेव दिव्यद् विकसदरविन्दं तस्य रसभावादयो मरन्दास्तैस्तदास्वादैर्मतश्चित्तद्विरेफपतिर्मनोमधुपराजो यस्य स अम्बुजनेत्रसक्तः श्रीजानकीरघुनाथानुरागीत्युभयसम्पत्तिर्दर्शिता। प्रथितां विख्यापितां माधुर्य्येण वर्ण्यमाणेन तन्मधुरिम्णा काव्यगुणेन वा मञ्जुलानि पदानि सुबन्ततिङन्तानि प्रतिपादिकानियस्यास्ता हरिराचार्य्यः। वसन्त तिलका छन्दः

अर्थ—रहस्य केलि निरूपक प्रबन्ध की रचना साहित्य-शास्त्रबोध के बिना तथा युगलउपासना के बिना नहीं हो सकती है। अतः ग्रन्थकार अपने में दोनों सम्पत्तियां दिखलाते हैं "साहित्य" इस श्लोक से साहित्य-काव्य का निरूपण करने

वाला शास्त्र का नाम है वही विकसित कमल है उसमें रस-भाव, विभाव, अनुभावादिकों का जो वर्णन है वही उसका मकरन्द (रस) है। उस रस के आस्वादन करने में जिनका मन मधुपराज है। तथा कमललोचन श्रीप्राणवल्लभजू में आसक्त हैं श्रीप्रियाप्रियतम जू के अनुरागी होने से दोनों सम्पत्तियाँ अपने में दिखलाई अर्थात् युगलउपासना तथा साहित्य शास्त्र का ज्ञान ये दोनों सम्पत्तियां आप में परिपूर्ण हैं माधुर्य्य वर्णन से एवं काव्यगुणोंसे प्रबन्ध में विलक्षण मधुरिमा है तथा कोमल सुबन्त तिङन्त प्रतिपादकपदोंसे श्रीहर्य्याचार्य्यजी महाराज दिव्य केलिको वर्णन करते हैं। इस श्लोक में बसन्ततिलका छन्द है॥ २ ॥

श्रीरामस्य समस्तभूपतिमणेर्यन्नृत्यकौतूहलम्
तत्तास्मिन्नहि दुर्घटं रसिकतासम्भाजि सर्वेश्वरे।
इत्थं यत्खलु भारतीभगवतः संवीक्ष्यते विस्फुटं,
बाल्मीकस्य ततोरघूद्वहधियो नृत्यं वितन्वन्तुतत्॥३

अर्थ—समस्त भूपति शिरोमणि श्रीरघुवंशमणि श्रीरामभद्रजू की रासलीला अयुक्त नहीं है क्योंकि रसिकता का एक मात्र आप ही आश्रय हैं रसिकशिरोमणि हैं अर्थात् रसानन्द-परवश हैं तथा सर्वेश्वर हैं परात्पर ब्रह्म हैं) श्रीरामरास प्रतिपादक बचन महर्षि श्रीबाल्मीकि का स्पष्ट है। अतः हे श्रीरास

रसिक भक्तों ! श्रीजानकीरमण के नृत्य (रास) को निर्भीक होकर बिस्तार करो । ३॥

भाष्यम्—ननु श्रीरामस्य राजाधिराजत्वान्नृत्यलीला न संभवेदतोऽस्मिन् वर्ण्यमानासौ कथं संगच्छेतेत्येतदाक्षेपं परिहर्तुमाह श्रीरामस्येति—महाराजाधिराजेऽपि रामे रसिकता संभाजि सति नृत्यकौतुहलं न दुर्घटं—रसानन्दपारवश्यं तत्र हेतुरित्यर्थः। हेत्वन्तरमाह सर्वेश्वरे परब्रह्मणि ततश्चतथाभूतस्य तस्य नित्यानन्दधर्मकत्वात्तदानन्दरूपा सा नृत्यलीला नित्यमनुवर्तेतेति श्रुतिः 'एको देवो नित्यलीलानुरक्तो' भक्तव्यापी भक्तहृद्यन्तरात्मेति, अथवा राज्ञां नृत्यादिलीला स्वयमयुक्ता उपहासास्पदत्वात्तदावेशे राज्यभ्रंश्यादिति चेत्तत्राह सर्वेश्वर इति न केवलमसौराजा किन्तु सर्वेश्वरः कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः स्वेच्छानुसारेण क्रीडति अतो न तस्य कोऽप्युपहसिता राज्याकर्षकश्चेति।

अर्थ—यदि कोई संदेह करें कि श्रीरामभद्रजू राजाधिराज हैं अतः वे रासलीला नहीं कर सकते हैं तब इस ग्रन्थ में कैसे वर्णन किया जाता है इस आक्षेपको निराकरण करते हैं "श्रीरामस्य इस श्लोकसे-महाराजाधिराज होनेपरभी श्रीरामभद्र

जू रसानन्दके सम्यक्भोक्ता होनेके कारण नृत्यलीला उनमें अयुक्त नहीं है रसानन्दके परवश होनाही हेतु है। द्वितीयहेतु देते हैं कि वे सर्वेश्वर हैं सर्वेश्वर परब्रह्म का आनन्द नित्यधर्म होने के कारण उनकी सच्चिदानन्द मयी नृत्यलीला नितान्त अनुवर्तनीय है❀। श्रुति कहती है कि "एक देव है" (दिव्य परिकरों के क्रीड़ाशील हैं) वे नित्यलीला से युक्त रहते हैं सभी भक्तों के समक्ष व्यापकरूपसे तथा अन्तरात्माहोकर वही विराजमान हैं।

अथवा राजाओं केलिए रासविलास आदि अपने स्वयं करना अयुक्त है तथा उपहास के योग्य हैं ऐसा करने से राज्य नष्ट हो जाता है इस शंकाका समाधान करते हैं कि-श्रीचक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्र जू केवल राजा ही नहीं हैं किन्तु सर्वेश्वर भी हैं-अतः श्रीरामभद्र कर्तुं समर्थ हैं। अर्थात् सत्यकाम सत्यसंकल्प होने से समस्त अभिलषित वस्तु सृष्टि स्थित्यादि कार्य करने में समर्थ हैं तथा अकर्तुं समर्थः अर्थात् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र एवं विलक्षण शक्तिसम्पन्न होने से आकार्य को भी कर सकते हैं। अन्यथा कर्तुं समर्थः—अर्थात् जड़ प्रपञ्च में चेतनता का आविष्कार नीरस प्रपञ्च में सरसता का सञ्चार तथा मशक को ब्रह्मा एवं ब्रह्मा को मशक बना देना सर्व समर्थ प्रभु का ही कार्य है अतः वे स्वेच्छानुसार क्रीड़ा करते हैं उनका

❀आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन इति श्रुति ब्रह्मके आनन्दको जानने वाला किसी से नहीं डरता है।

न तो कोई उपहास करने वाला है और न कोई राज्य ही हरण करने वाला है।

अथवा ननु रसिकतारसानुभवः सच्च सभ्यानामेव नत्वनुकार्यादीनां तेषां लौकिकत्व पारिमित्यभयादिशालिनाम परिमितानन्दानुभवरूपा रसिकता न स्यात्-अतोऽनुकार्य्यस्य रामस्य रसिकता संभाजनं कथमिति साहित्यविदां राद्धान्तस्तमिमं निरस्यन् विशिनष्टि सर्वेश्वर इति। ततश्च लौकिकत्वादि हेत्वभावान्मुख्यं रसिकत्वं-श्रीरामस्यैव। सभ्येषु तु तदनुयायिषु तदनुग्रहादेव यथाधिकारं तत्प्रसर इति भावः।

अथवा रसिकता कहते हैं रसानुभवको वह सभ्यों केही योग्यहै, अनुकार्यों के लिये अयोग्य है, क्योंकि अनुकार्य को लौकिक होने से तथा परिमित (स्वल्प) होने से एवं भयादियुक्त होने के कारण अपरिमित आनन्द रूप रसानुभव का अधिकारी नहीं हो सकता है अतएव श्रीरामभद्रजू को भी अनुकार्य होने से रसिकता का आश्रय कैसे कहा जाय यह साहित्यकारों का सिद्धान्त है। उसका खण्डन करते हैं कि श्रीरामभद्र सर्वेश्वर हैं। इसलिए लौकिकता परिमितता भयादि दोषाभाव होने से यथार्थ रूप में रसिकता (रस का अनुभव) श्रीरामभद्र जू ही कर सकते हैं। सभ्य जो श्रीरघुनन्दनजू के अनुयायीगण हैं उन

सबको श्रीचक्रवर्तीकुमारजू के कृपाश्रित होने से आपकी कृपा से ही अधिकारानुसार रसानुभव होना सम्भव है।

ननु श्रीरामस्य वह्वीभिः---कान्ताभिः सह नृत्यलीलां वयं न श्रद्ध्महे निर्मूलत्वात् रामायणादि मूलग्रन्थानुक्तेः एकपत्निव्रतधरत्ववाक्यविरोधाच्चेति तत्राह इत्थमिति भगवतः सर्वज्ञस्य वाल्मीकस्य मुनेरित्थं शृङ्गाररसाविष्ट श्रीरामनृत्यलीलानिरूपिका भारती वाक्यं संवीद्यतेऽतः प्रमाणशरणाः रघूद्वहधियोरामैकनिष्ठ-चित्ताः भक्तास्तन्नृत्यं वितन्वन्तु विस्तीर्य प्रकाशयन्त्वित्यर्थः।

यदि कोई सन्देह करे कि श्रीरामभद्रजू की अनेक कान्ताओं के साथ रासक्रीड़ा प्रमाणित न होनेसे माननीय नहीं है क्योंकि श्रीमद् वाल्मीकीयरामायणादि ग्रन्थोंसे एकपत्नीव्रत धारणरूप बचनोंसे विरोध पड़ता है इसका समाधान करते हैं कि-श्रीचक्र-वर्तीकुमार श्रीरामभद्रजू के अनेक नायिकाओं के साथ रासवि-लासादि होने का प्रमाण—भगवान् सर्वज्ञ श्रीवाल्मीकि मुनि के शृङ्गाररस से युक्त श्रीरामरासलीला के निरूपक बचन स्पष्ट रूप से बहुत से हैं, अतः ग्रन्थकार कहते हैं कि हे श्रीमैथिली-रमणचरणानुरागियों ? आप सब श्रीरामरासलीला को विस्तार से प्रकाश करें।

यदुक्तमुत्तरकाण्डे, उपानृत्यन्त राजानं नृत्यगीत वि-

शारदाः। अप्सरोगण संघाश्च किन्नरीपरिवारिताः दक्षिणा रूपवत्यश्चस्त्रियः पानवशंगताः। उपानृत्यन्त काकुत्स्थं नृत्य-गीत विशारदाः। मनोऽभिरामा रामास्ता रामो रमयतांवरः, रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिता इति। अत्रोपानृत्यन्त इत्यन्तर्भावितण्यर्थत्वात् काकुत्स्थं श्रीरामं राजानमनर्तयन्नि-त्येवार्थं अन्यथा पौनरुक्त्य प्रसंगः तदेवं रासाख्यनृत्यविशेषः सिद्धः। कौशलखण्डादिवचनगण प्रामाण्याच्च, रससमूहो रासः। एवञ्च निर्मूलत्वं दूरोत्सारितम् एकपत्निव्रतधरत्वंतु एकयामुख्यया पत्न्या सीतयैव सह व्रतमग्निहोत्रादि गार्ह-स्थ्यधर्मं धरतीति व्याख्यानात्, सीतांशरूपेण अन्यासां ततो नातिरेकाद्वा संगतिमत्। सीतामात्रसंभोक्तृत्वंतदिति-तु ये वदन्तितन्न, रामस्ता रमयामासेत्युक्तेः एतत्सर्वमभि-प्रेत्य ग्रन्थकारोऽपि वक्ष्यति "इत्थं स्वलास्योदित साधु-माधुरी"त्यादि।

यथा उत्तरकाण्ड में श्रीमहर्षिजी ने कहा है कि राजा के समीप चारो ओर नृत्यगीत में विशारद अप्सरागण के समूह किन्नरियोंसे परिवारित परम कुशला तथा परम सुन्दरी स्त्रियां दिव्य मैरेयादि पान से मतवाली होकर नृत्य कररही हैं तथा सभी श्रीकाकुत्स्थ श्रीरघुनन्दनजू को नृत्य करा रहीं हैं। --ये सभी नायिकायें नृत्यगीतादि में पण्डिता हैं

तथा श्रीप्राणवल्लभजूको सुख देने वाली हैं दिव्य वसनभूषणादि से विभूषित नायिकाओं को रमण करानेवालों में सबसे श्रेष्ठ धर्मात्मा श्रीचक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजू नित्य रमण कराने लगे। यहां पर "उपानृत्यन्त यह पद अन्तर्भावितण्यर्थ है" अतः सभी नायिकायें श्रीकाकुत्स्थराजा श्रीरामभद्र जू को नृत्यकराईं यही अर्थ होगा। अन्यथा पुनरुक्तिदोष होगा, इससे रासादि नृत्य विशेष सप्रमाण सिद्ध हुआ। श्रीकौशलखण्ड आदि ग्रंथों में बहुत प्रमाण हैं। रसका समूह हीं रास है इससे रामरास प्रमाणमूलक सिद्ध हुआ। एक पत्निव्रत धारण का अर्थ है कि एक मुख्य पत्नि श्रीजनकनन्दिनीजू के साथ हीं व्रत अग्नि-होत्रादि गार्हस्थ्यधर्मों का अनुष्ठान करना ऐसी व्याख्या करनी चाहिए१। श्रीमैथिलीजू की अंशभूता अन्य नायिकायें उन

१-इयं सीता मम सुता सह धर्मचरीतव। प्रतीच्छ चैनां भद्रं-ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना। वाल्मीकि० बा०

पाणिग्रहणकाल में श्रीराजकिशोरीजू के सामान हीं वय-रूप गुणवाली वहुत सी सखियों को देखकर श्रीरघुनन्दन आश्चर्य चकित हो गये और विचारने लगे कि किनका पाणिग्रहण करें, तब श्रीमिथिलेशज ने अंगुल्यानिर्देश किया कि 'इयं सीता' ये श्रीसीताजी हैं इन्हीं के पाणि-ग्रहण से सभी इनके अङ्गभूता सखियों का भी पाणिग्रहण हो जायगा। 'सहधर्मचरीतव' कहनेका भाव यहहै कि यज्ञ हवन-दान आदि गार्हस्थ्य धर्मों का आचरण इन्हीं के साथ आप करेगें, किन्तु भोग पत्नियां तो

से पृथक नहीं हैं। अतः एक पत्निव्रतधरत्व वाक्य की संगति उक्त अर्थ से सिद्ध हो जाती है। श्रीजनकराजनन्दिनीजू के साथ केवल भोक्तृत्व जो कहते हैं उनका वचन "रामस्तारमयामास,- श्रीरामभद्र ने उन सभी नायिकाओं को रमण कराया" इस उक्ति से खण्डन हो जाता है। इसी अभिप्राय से ग्रन्थकार भी आगे कहेंगे कि "इस प्रकार अपने

सभी होंगीं। अतएव श्रीअयोध्याकाण्ड में श्रीकैकेयीजी से मन्थरा ने कहा "संप्रहृष्टा भविष्यन्ति रामस्य परमास्त्रियः अप्रहृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये। अर्थ- श्रीरघुनन्दन की परमस्त्रियां राज्याभिषेक होने से सभी प्रसन्न होंगीं तथा आपके पतोहू सब श्रीभरतकुमार के राज्य नहीं होने से अप्रसन्न होंगी। यहां स्नुषा यह रूढ़ि शब्द केवल पतोहू का ही वाचक है इसके साहचर्य से "रामस्य परमास्त्रियः" का अर्थ भी भोगपत्नियां ही लेना चाहिये। तथा वरकांचनकेयूरमुक्तावरविभूषितैः। भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा, इस श्लोक में परम नारियों की भुजाओं से अभिमर्दित श्रीरघुनन्दनजू की भुजायें थीं ऐसा कहा गया है। श्रीराजकिशोरी जू ने स्वयं कहा है कि "पितुर्निदेशं नियमेन कृत्वा वनान्निवृत्तश्चरितव्रतस्त्वम्। स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिस्त्वं रंस्यसे वीतभयः कृतार्थः। पिता की आज्ञा पालन करके बनसे लौटकर बड़े२ नेत्रों वाली नायिकाओं के साथ निर्भय होकर आप रमण करेंगे"। यहां पर भी "स्त्रीभिः" ये बहुवचन है। अतः बहु पत्नित्व बोधक वचन महर्षि वाल्मीकि के बहुत हैं।

नृत्य से प्रकटित सुन्दर माधुरी से परिपूर्ण चित्त वाली सभी वनिताओं के साथ श्रीप्रियतमजूने कुञ्ज समूहों में रमण किया "। इत्यादि।

एवं व्यङ्ग्यमर्यादया वर्णनं च श्रीरामायणस्य काव्यरूपत्वात् उचितमेव तत्वं चादिकाव्यमिदं रामेत्यभिधानात्। यत्तु रामायणे प्रबन्धे करुणो व्यङ्ग्य इति कल्पयन्ति तत्किल ग्रन्थपौर्वापर्यानवलोकनादेव । सीतानुरागवैवश्यप्रचुरतायाः प्रतिसन्दर्भं दृश्यमानत्वात् तत्रहि शृंगारास्वादायोग्यं जगत् प्रतीत्या करुणधारया तमावृण्वन् मुनिरवर्णयदितिप्रतीयते। उत्तरकांडे तु तदिदं सुव्यक्तं अशोकाटवीविहारंसविस्तरमभिधाय-एवं तयोर्विहरतोः सीताराघवयोश्चिरं दशवर्षसहस्राणिगतानि--सुमहात्मनोरित्युक्तः

अर्थ—इसी तरह व्यङ्ग्य मर्यादा से अर्थात् व्यञ्जनावृत्ति से वर्णित श्रीमद्रामायण का काव्यत्व होना प्रसिद्ध है उचित भी ऐसाही है-अर्थात गोप्य रहस्य को अभिधावृत्ति से वर्णन करना अनुचितहै-आगे श्रीब्रह्माजी कहेंगे कि हे श्रीरामभद्रजू यह आदि काव्य समस्त आपहीं में प्रतिष्ठित है आपके सिवा अन्य कोई काव्यों का यशोभाक् नहीं हो सकता इत्यादि। जो कोई श्रीरामायण प्रबन्ध में करुणा व्यङ्ग्यहै ऐसी कल्पना करते हैं

उन्हें ग्रन्थ का पूर्वापर नहीं बिचारनेसे हीं ऐसी प्रतीति होती है-क्योंकि प्रतिकाण्ड में श्रीप्रियानुराग की बहुलता देखी जातीहै१

---

१ यथा—रामस्तु सीतयासार्धं विजहार बहूनृतून्। मनस्वीतद्गतस्तस्या नित्यं हृदि समर्पित: ॥ इस प्रकार श्रीरामभद्रजू ने श्रीजनकराजनन्दिनीजू के साथ बहुत ऋतुओं तक विहार किया मनस्वी श्रीप्रियतम जू श्रीप्रियाजू में मन-बचन-कर्मों के द्वारा अत्यन्त आसक्त रहते हैं श्रीप्रियाजू भी अपने हृदय में श्रीप्रियतमजू को बैठाये रहती हैं।

भावार्थ—पूर्व में पितृशुश्रूषण धर्मप्रवर्तन-देवाराधन वर्णन किया गया है यहां 'तु' शब्द उन सबसे बिलक्षणता सूचित करता है। तथा 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इस सूत्र से सीता शब्द में तृतीया हुई है स्वाभाविक सौन्दर्यमाधुर्यलावण्यसागरा श्रीप्रिया जू केलिविलासमें अप्रधान हो गई हैं इससे श्रीप्रियतम की आसक्ति विशेष सूचित किये हैं। 'विजहार" यह परस्मैपदसे केलिफल का पर्यवसान नहीं सूचित होता है। यदि विहाररूप क्रियाफल कर्तृगामी होता तो "स्वरितञितः" इस सूत्र से आत्मनेपद हो जाता एवं बहुतकाल विहार करने पर भी श्रीयुगलसरकारके भोगका आरम्भ ही जानपड़ता है। 'बहूनृतून्' यहां अत्यन्त संयोग में द्वितीया विभक्ति है इससे निरन्तर विहार सूचित होता है। "संवत्सरान्" बहुत वर्षों तक नहीं कहकर 'बहून् ऋतून्" बहुत ऋतुओं तक विहार किये इससे सभी ऋतुओं के अनुकूल भोग सामग्रियों के साथ विहार सूचित किये। 'मनोऽस्यास्तीति मनस्वी' यहां भूमार्थे मत्वर्थीय: अर्थात् अतिशय अर्थ में मत्वर्थीय प्रत्यय हैं। इससे श्रीप्रियाजू के संकल्पों से भी अतिशय संकल्पयुक्त होकर भोगस्रोत के प्रवर्तक प्रियतम

शृङ्गार रसास्वादनमें समस्त जगत को अयोग्य जानकर करुणा धारासे शृङ्गार रस को छिपाते हुये श्रीमहर्षिजीने समस्त श्रीरामायण काव्यमें साङ्ग शृङ्गाररस का ही प्रधान रूपसे वर्णन किया है २ । उत्तरकाण्ड में यह स्पष्ट है की अशोकवाटिका-बिहार को विस्तार पूर्वक वर्णन कर, इसप्रकार दोनों श्रीप्रिया प्रियतम को बिहार करतेहुए दशहजार वर्ष बीतगये ऐसा कहाहै

को कहागया है । "नित्यं तद्गत:" तस्यां गत: तद्गत: है अर्थात् श्रीप्रियारसलीन हो रहे हैं । सर्वदा श्रीप्रियाजू में आसक्त हैं "तस्या हृदि-समर्पित:' श्रीप्रियाजू भी प्रियतम के अनुकूल व्यापारों से प्रियतम पर रीझकर श्रीप्रिय में ही चित्त दिये रहती हैं । 'नित्यम्' बहुत काल तक-भोग होनेपर भी नवीन संगमके सदृश अपार प्रेम रस संयुक्त हैं । "प्रिया तु सीता-रामस्य दारा पितृकृता इति । गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभ्यवर्धत । श्रीचक्रवर्तीकुमारके श्रीमिथिलेशकिशोरीजू में अधिक प्रीति बढ़ने के कई कारण हैं प्रथम तो पिता श्रीजनकराज द्वारा प्राप्त हैं इससे तथा "गुणात्" केलि कौतूहल आदि में वैदग्ध्य गुणों से तथा 'रूपगुणात्' श्रीविग्रह के लावण्य आदि अपरिमित गुण आगरी श्रीप्रियाजू में श्रीप्रियतमका प्रतिक्षण अनुराग बढ़ता ही जाताहै

२—'काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्' समस्त श्रीरामायण काव्य श्रीराजकिशोरीजू का ही महान् चरित्र है । अत: स्त्री प्रधान होने से शृङ्गाररस की प्रधानता श्रीरामायण में है । सम्भोग विप्रलम्भ के द्वारा समस्त काण्डों में साङ्ग शृंगार का वर्णन है ।

पाद्मे चोमां प्रतिशिवः एवं प्रशासतस्तस्य राघवस्य महेश्वरि, अत्ययादश साहस्रं रममाणस्य सीतया। इत्युपादिशत् तदेवं नित्य-संयोगो निरूपितः। "यत्तु यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत्, दशवर्षसहस्राणि वाजिमेधान्यथाकरोत्। इति वाल्मीकिना सीताविवासोत्तरं स्वर्णमयी सीतायज्ञार्थं कृतेति तद्विच्छेदोऽभिहितः सच प्रकाशान्तराभिप्रायेण वान्यथा पूर्वोक्तविरोधादिति। येतुबुधंमन्याः कल्पयन्ति श्रीनारायणो रमापति-वैकुण्ठधामा देवैरभ्यर्थितो रामादिरूपाण्यास्थाय तैर्देवकार्यं निर्वाह्य तदन्ते तानित्यक्त्वास्वधामागमदिति। रामादिरूपाणां तेषांक्वाचित्कत्वात् किञ्चतदास्थयेति तदिदमसारम्-'अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः, इत्यादि श्रुतिविरोधात्।

श्रीपद्मपुराण में श्रीशिवजी श्रीउमाजी से कहतेहैं कि-हेमहेश्वरि इसप्रकार राज्य शासन करते हुए श्रीरघुनन्दनजू को श्रीजनक-नन्दिनीजू के साथ रमण करते हुये दशहजार वर्ष बीतगये। इस प्रकार दोनों दिव्यदम्पती का निथ्य संयोग का निरूपण कियाहै जो कि प्रतियज्ञमें पत्नि के लिये स्वर्णमयी श्रीजानकीजू बनाई गईं तब दशहजार वर्ष वाजिमेधकिया। श्री महर्षिजी ने श्री-जनकनन्दिनी जू के विवासोत्तर स्वर्णमयी श्रीसीता बनाई गई।

इस तरह दोनों का वियोग वर्णन किया है वह प्रकाशान्तर (रूपान्तर) से जानना चाहिये, अन्यथा पूर्वोक्त वचनों से विरोध होगा। जो कोई पाण्डित्य के अभिमानी ऐसी कल्पना करते हैं कि श्रीनारायण रमापति वैकुण्ठनिवासी देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर राम आदि रूपों में अवतीर्ण होकर देव-कार्यों का सम्पादन करने के पश्चात् राम आदि रूपों को छोड़कर श्रीवैकुण्ठ चले जाते हैं।

अतः राम आदि रूप कुछ काल तक रहते हैं पुनः यह रूप उपास्य कैसे हो सकते हैं? ऐसी शङ्का शास्त्र अनभिज्ञों की है अतः असार है। क्योंकि श्रुति भगवती कहती है कि-अर्धमात्रात्मक श्रीरामभद्रजू ब्रह्मानन्द के एकमात्र विग्रह वाले हैं" इत्यादि श्रुति से विरोध पड़ता है।

'सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य-महात्मनः, हानोपादानरहिताः नैव प्रकृतिजाः क्वचित्। परमानन्दसन्दोहाः ज्ञानमात्राश्चशाश्वताः सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः। इति स्मृतिविरोधाच्च तस्मान्नित्यमेव श्रीरामरूपंतद्धाम च श्रीमदयोध्यापुरादिकमितिसुधिभिरास्थेयम्। यत्तुतद्वासिनोऽपिगृहीत्वा श्रीरामः स्वधामागमदिति वाल्मीकिवचनं तत्किलतदैश्वर्यख्यापनपरं वस्तुतस्तुनित्य-मयोध्यामधिवसतीति तस्मात् श्रीरामस्य नृत्यलीला प्रमाण-सिद्धा-परमानन्दसन्दोहरूपा रसविब्धिरूपास्येति सुस्थम्। शार्दूल विक्रीडितं छन्दः ॥३॥

अर्थ—"सभी नित्यनिरन्तर उस परमात्मा के देह हेय उपादान से रहित प्रकृति जन्य नहीं है.. परमानन्द के समूह ज्ञान स्वरूप शाश्वत सभी भगवद् विग्रह पूर्ण तथा पूर्ण कल्याण गुण वाले हैं सभी दोष वर्जित हैं" यह स्मृति विरोध पड़ता है❀। अतः श्रीरामरूप नित्य हैं तथा श्रीअयोध्या नित्य

❀ मत्स्यकूर्मवराहादिरूपधारिणमव्ययम् ॥ २४ ॥

अथ विभवापरपर्यायलीलावताररूपं प्रणमति–मत्स्येत्यर्द्धेन अव्ययमिति नहि पूर्वरूपोपमर्द्देन रूपान्तरस्वीकारः ताद्रूप्येण स्थित एव तस्मिन् रूपान्तराविर्भावात् एतदुक्तं भवति श्रीरामचन्द्रो भगवान् मूलतत्वं देवादिभक्तकार्यवशात् स्वयमाविर्भवति स्वस्मिन्नेव कदाचिन्मत्स्यादिरूपाणि च प्रत्यापयति वैडूर्यमणिरिव रूपान्तराणि नहि तस्मादन्यन्मत्स्यादि "योहवै श्रीरामचन्द्रः सभगवान् यः मत्स्यकूर्माद्यवताराः भूर्भुवः स्वः तस्मैवै नमोनमः" इति श्रीरामतापनीयवाक्यात् सर्वाणि च रूपाणि सनातनानि सर्वगुणवन्तीति मन्तव्यम्। "सर्वेनित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः। हानोपादानरहिताःनैव प्रकृतिजाः क्वचित्। परमानन्द सन्दोहाः ज्ञानमात्राश्चसर्वतः सर्वेसर्वगुणैःपूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः" इति महावाराहवाक्यात्। न च पूर्वपश्चाद्भावेनानित्यत्वं क्वचिच्छङ्क्यम् एकस्मिन्नेव वस्तूनि श्रीरामे वैडूर्यमणाविव मत्स्यादिरूपाणां यौगपद्यसिद्धसत्वात्। स्मृतिश्चैवमाह–मणिर्यथाविभागेन नीलपीतादिभिर्युतः। रूपभेदमवाप्नोति ध्यान भेदात्तथाच्युतः" इति। मणिरत्नं वडूर्यं किञ्च–यद्यपि सर्वगुणकृता सर्वंश्चपूर्णविशेषा तथापि पञ्च लोकैस्ते

आदि धाम हैं ऐसा विवेकी गण को जानना चाहिये। जो कि

सर्वेगुणाः प्रतीयन्ते तान्पूर्णान्वदन्ति यथा नृसिंहरामकृष्णान् यदुक्तं "नृसिंहरामकृष्णेषु षाड्गुण्यं परिपूरितमिति। यत्र ते स्वरूपे सन्तोऽपि कार्य्याभावान्नाविर्भवन्ति ततो लोकैर्न प्रतीयन्ते तास्तु कला अंशाश्चेति द्विधायथा व्यासादीन् मत्स्यादींश्च। यथैक एव सर्वशास्त्रवित् क्वचित् सर्वशास्त्रोद्‌ग्राही सर्वज्ञः कथ्यते क्वचित्तु स एव द्व्येकशास्त्रोद्‌ग्राही ज्ञउच्यते सर्वशास्त्रैकदेशोद्‌ग्राही च सर्वज्ञसदृश इति तथा द्रष्टव्यम्।

अब विभव--लीलावतारूपों को प्रणाम करते हैं "मत्स्य" इस आधे श्लोक से अव्ययम् अर्थात् पूर्व रूपको त्यागकर नहीं दूसरे रूपोंको ग्रहण करते हैं किन्तु श्रीरामरूप में स्थित होते हुए उसी रूप में अन्य अवतार रूपों को स्वीकार करते हैं। भाव यह है-भगवान् श्रीराम चन्द्र--मूलतत्व हैं (सर्वावतारीहैं) देवता तथा भक्तों की प्रार्थना से स्वयं प्रकट होते हैं तथा अपने रूपमें हीं कभी मत्स्य बाराह आदि रूपों को भी दिखलाते हैं। वैडूर्य मणिके सदृश जैसे वैडूर्य मणिमें विभिन्न पीत लाल हरित पुष्पों के सम्बन्धसे सभी रंग दिखलाई देतेहैं। श्रीरामरूपसे भिन्न मत्स्य आदि रूप नहीं हैं। 'जोश्रीरामचन्द्र हैं वे षडैश्वर्य सम्पन्न हैं भूर्भुवः स्व आदि लोक रूप हैं उनको बारम्बार नमस्कार है'। इस रामतापनी श्रुति के अनुसार सभी रूप सनातन हैं तथा सभी गुणों से पूर्ण हैं। प्रभु के समस्त विग्रह नित्य हैं, निकृष्ट कारणों से रहित हैं कोई प्राकृत नहीं हैं, परमानन्द के समूह हैं सभी ओर से ज्ञानरूप हैं समस्त गुणो से पूर्ण सभी दोषो से रहित हैं। यह महावाराहबचन है पूर्व पश्चात् भाव से अनित्यता का सन्देह नहीं करना चाहिए। एक ही

सभी श्रीअयोध्यावासियों को लेकर श्रीरामभद्र श्रीसाकेत चले गये ऐसा श्रीमहर्षिजी का वचन है वह श्रीरामभद्रजू का ऐश्वर्य बोधक है। वस्तुतः तो नित्य श्रीअवध मे श्रीजनकनन्दिनीजू के

श्रीरामरूप में वैडूर्यमणि के सदृश मत्स्य आदि रूपों को एक समयमें ही सिद्ध होना सम्भव है। स्मृति भी कहती है जैसे मणि हरित पीत नील आदि रंगों के साथ उन २ रूपों को स्वीकार करता है उसी प्रकार उपासकों के ध्यान भेद होने से प्रभु को भी अपने रूपो में भेद करना पड़ता है मणि से वैडूर्यमणि लेना चाहिये। यद्यपि समस्त गुणों की पूर्ति सभी विग्रहों में समानहीं है तथापि लोगों को जिनमें सभी गुणों की प्रतीति होती हैं उनको पूर्ण मानते हैं जैसे श्रीनृसिंह श्रीरामकृष्ण आदि विग्रहों को पूर्ण मानते हैं। जैसा कहा है श्रीनृसिंह "श्रीराम श्री-कृष्ण में षड् गुण पूर्ण हैं। जिस विग्रह में ये गुण रहते हुए भी आव-श्यकता नहीं होने से प्रकट नहीं होते अतएव लोगो को देखने में नहीं आते वहां अंश कला यही व्यवहार होते हैं जैसे श्रीव्यास आदि मत्स्य-आदि रूपों में। जैसे एक ही सर्वशास्त्रों को जानने वाला कभी सभी शास्त्रों को विचार करता है तब सर्वज्ञ कहाता है वही कभी एक दो शास्त्रों का विचार करता है तब केवल ज्ञानी कहलाता है किन्तु सर्व शास्त्रों पर विचार करें अथवा एक दो शास्त्रों पर विचार करें सर्वज्ञता समान ही रहती है। (यह प्रसंग श्रीजानकीगीतकार श्रीहर्याचार्यविर-चित श्रीरामस्तवराजभाष्य से उद्धृत है।)

साथ श्रीरघुनन्दनविहार करते हैं १। अतः श्रीरामभद्रजू की रासलीला श्रुति स्मृति पुराण से सिद्ध है तथा-परमानन्द का समूह है यही रसिकजनों के उपास्य है अतएव ग्रन्थकार वेदोपबृंहणभूत (वेदों का विस्तार) श्रीबाल्मीकीय रामायण का रामरास में प्रमाण देते हुए रसिकों से कहते हैं कि हे रसिकगण ! आप सब निर्भय होकर श्रीरामरास का विस्तार करें। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडितछन्द है ॥ ३ ॥

भवति भो रसिका रघुनन्दने,-
जनकजारमणे यदि मानसम् ।
सरसकाव्यकलाश्रितसत्पदां-
हरिगिरं शृणुतातिमृदुं तदा ॥४॥

अर्थ—हे रसिको ? यदि श्रीजानकीरमण श्रीरघुनन्दनजू में आप सबका मन लगा हो अथवा उनमें अपना प्रगाढ़ भाव

---

१ अवधपुर नित्य बिहारी राम।
चहुँदिशि जिनके कञ्चन अवनी वनप्रमोदसुखधाम। द्वादश चतुर्विंशजेहि भीतरभिन्नभिन्नगुतनाम। तहँ तहँ विहरत अवधविहारी दिये अंशन भुज दाम। कुञ्ज कुञ्ज प्रति अमित सहचरी सेवन विधि अनुपाम। मिटत त्रिगुण चन्द्रार्क वरुणयम ये नहिं मिटत ललाम। जे जनरसिक भक्त सेवनकरि पायो है रति अष्टयाम। मानस सरसि भाव शुचि अम्बुज युगलप्रिया विश्राम॥ (श्रीयुगलप्रियाजी)

चाहते हों तो सरसकाव्य की कलाओं से सुसज्जित, सुन्दरपदों से युक्त, अति कोमल मेरी (श्रीहर्य्याचार्य) वाणी को आदर पूर्वक श्रवण करें ।

भाष्यम्—अथैषा शृङ्गार-लीला सर्वैर्न श्रोतव्या किन्तु तद्भावाक्रान्तैरेवेत्याशयेनाह भवतीति भो रसिकाः ! जनकजारमणे जानकीरूपगुणासक्ते रघुनन्दने यदि भवदीयं मानसं वर्तते तादृशं तं लब्धुकामाश्चेद्यूयं तर्हि हरिगिरं शृणुत तया भवतां भावनापुष्टिः स्यादिति भावः । कीदृशी सरसकाव्येषु या कला वैदग्धीरसभाववत्ताछन्दोऽलंकारादि वैचित्री च तयाश्रितानि सन्ति सुन्दराणि पदानि यस्यां तां नचान्यकाव्यवत् काठिन्यमिहास्ति इत्याहातिमृदुमिति । शब्दोऽर्थतश्चकोमलांक्लिष्टशब्दाडम्बरेण विरहितां पाठेनार्थ-विचारेण च सुखप्रदामित्यर्थः ॥४॥

अर्थ—यह श्रीप्रियाप्रियतमजू की शृङ्गारलीला श्रवण में सभी चेतनों का अधिकार नहीं है। किन्तु आचार्य द्वारा जिन्हें भाव प्राप्त है वेही अधिकारी हैं १। इसी आशय से ग्रन्थकार

मिथिला चिनुगाते नहिं दरसे ।
पढ़ै गुनै समुझै समुझावै पोथा लादे खरसे ।
वसति अनादिथली मणि भूमी मुक्ति फिरै घरघरसे

कहते हैं कि हे रसिको ? श्रीप्रियाजू के रूप-गुणों में आसक्त श्री प्राणवल्लभजू में आपसब का मानस है, अर्थात् श्रीप्रियाप्रियतमजूका नित्य अखण्डविहार देखना, एवं श्रीप्रियतमजू को प्राप्त करना चाहते हैं। तो मुझ हरि (श्रीहरिआचार्यजू)कीवाणी श्रवण करें इस वाणीके श्रवण से आप सबकी भावनाकी पुष्टि होगी१

विहरत सदा रसिक रघुनन्दन लली चरण रजपरसे ॥
यही जानि सुखमानि बसी सब कांचनवन रस अरसे
सची शारदा मातु भवानी कमला सेवन करसे ॥
जे रूखे रसकथा पगे नाहि मोह निशा प्रिय चरसे।
लहे न रसिक गुरू संगति भव वहै नही ग्रह गरसे।
परम रसिक श्रृंगार अहारी जगनभ बस जलधरसे॥
कामादिक पवन पवन हुं गति थाकी काल डरत जेहि डर से।
सूरति मिथिला सब अंग शिथिला (विरह) विरहचढ़ी जनु ज्वर से।
विरही जिज्ञासू साली लखि कृपा मेह जल बरसे।
रसिकन की गति कथा कहानी संग लहैं तो सरसे।
अग्रस्वामि रसरीति मीलन को युगलप्रिया जियतरसे।

(श्रीयुगलप्रियाजी)

१ प्रथम षडच्चर युगलमन्त्र लेइ पुनि मिथिला अवध जन्म नातो पहिचानई। ऊर्ध्वपुण्ड धनुवान तप्त भुज अंशन पै कण्ठ में युगल कण्ठी शोभा सरसावई। श्रीअग्रस्वामी भणित प्रबन्धमिलि अष्टयाम सेवा श्रृङ्गारवीज अंकुर बढ़ावई। इष्ट कोपरत्व महामाधुर्य स्वरूप जाने दम्पती उपासना की रीतितव पावई। (श्रीरसिकप्रकाश भक्तमाल)

कैसी वाणी है—सरस काव्यों में पाण्डित्य एवं रसभाव आदि की जितनी कलायें होती हैं उन कलाओं से युक्त तथा छन्द अलङ्कारों की विचित्रताओं से सुसज्जित व सुन्दर पदों से युक्त है। अन्य काव्यों के सदृश यहां क्लिष्टता नहीं है अतः अति मृदु है शब्द और अर्थ से भी कोमल है। क्लिष्ट शब्दों के आडम्बर से रहित है पाठ मात्र से तथा अर्थ विचारने से भी सुखप्रद है ॥ ४ ॥

ललितरागे त्रिताली ताले

रघुकुलकमलविभाकर सुखसागर हे,
निजजनमानसवास जय जय दाशरथे ॥१॥
नीलनलिनरुचिसुन्दर गुणमन्दिर हे,
पीतवसनमृदुहास जय जय दाशरथे ॥२॥
जनकसुताहितपूजन वरकूजन हे,
दशमुखवंशहुताश जय जय दाशरथे ॥३॥
वचसि हरेरसशालिनि वसपालिनि हे,
निर्धुतनतभवपाश जय जय दाशरथे ॥४॥

अर्थ—हे रघुकुल कमल के सूर्य ! सुखसागर निजभक्तों के मानस में निवास करने वाले, हे श्रीचक्रवर्तीन्द्रनन्दन आपकी जय हो जय हो।

हे नीलकमल की कान्ति के सदृश सुन्दर, हे गुणों के मन्दिर, पीताम्बरधारी, मन्द-मन्द हास करने वाले, हे चक्रवर्तीन्द्रनन्दन आपकी जय हो जयहो।

हे श्रीप्रियाजू के पुजारी तथा श्रेष्ठ वचनों के द्वारा श्रीप्राणवल्लभाजू को रिझाने वाले हे दशवदनवंशदाहक श्रीचक्रवर्तीकुमार आपकी जय हो जय हो।

मुझ हरि (श्रीहरि-आचार्य जी महाराज) के रसभरे तथा रसिकों को पालन करने वाले वचनों में आप निवास करें हे शरणागतों के भवपाशछेदक हे श्रीचक्रवर्तीन्द्रनन्दन दाशरथे आपकी जय हो जय हो।

भाष्यम्—एवं लीलोत्कर्षवर्णनरूपमङ्गलाचरणेन ग्रन्थपीठकं निर्माय इदानीं तदाश्रयोत्कर्षवर्णनेन मंगलमाचरति-रघुकुलेत्यादिकयागाथया रघुकुलमेव कमलं तस्य-विभाकरः सूर्यस्तत्सम्बोधनं, सूर्यो यथा कमलं प्रकाशयति तथा रघुकुलं त्वमित्यर्थः। हे सुखसागर, अपरिमितानन्द-रूप, निज जनानामानसेवासो यस्य तत्सम्बोधनं हेभक्तानुरागिन्नित्यर्थः, हे दाशरथे-दशरथराजकुमार त्वं जय जय अत्यादरेवीप्सा, प्रकृति ग्रन्थानिष्टं निवार्य्य स्वोत्कर्षमाविष्कुर्वित्यर्थः॥१॥

अर्थ—श्रीप्रिय प्रियतमजू की रहस्यलीला के अभ्युदय के लिए मङ्गलाचरण से ग्रन्थ की भूमिका निर्माण कर लीला के आश्रय श्रीप्रियतमजू के अभ्युदय वर्णन परक पुनः मङ्गलाचरण करते हैं "रघुकुल" इस पद्य से रघुकुल कमल है उसके सूर्य, सूर्य जैसे कमलको प्रकाशित करता है. उसी तरह आप रघुकुल को प्रकाशित करते हैं. हे सुखसागर अपरिमित आनन्द स्वरूप स्वकीय भक्तों के मानस में विहार करने वाले हे भक्तानुरागी हे दशरथराजकुमार आपकी जयहो जयहो। यहां आदर अर्थ में वीप्सा हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के अनिष्टों को निवारण कर अपने उत्कर्ष को प्रकट करें।

नीलेति–नीलनलिनस्येव या रुचिः कान्तिस्तयासुन्दर हेगुणाः सौन्दर्य्यसत्यसन्धत्वरसिकत्वादयस्तेषां मन्दिरपरमाश्रय, हेपीतवसन प्रियारूपोद्दीपकत्वान्निरंतरं पीताम्बरधारिन्, हेमृदुहास। जनकेति–जनकसुतायै हितंपूजनं यस्य जनकसुतयावा हितमर्पितं पूजनं मन्दस्मितांचितापाङ्गवीक्षणरूपः सत्कारोयस्मिन् हे तथाभूत वरं कूजनं तदुपयोगिपरिहासभाषणं यस्यहे तथाभूत दशमुखो रावणः स एववंशः तस्यपुत्रपौत्रादि सर्वे तस्यहुताशो दाहकस्तत्सम्बोधनं इदमस्य व्यंगयम्। दशमुखवंशविनाशजातपरिश्रमस्य तव तदुपशमकांकमालाभ्यर्थनरूपवरपरिहासभाषणमुचितमेवेति।

अर्थ—नीलकमल की कान्ति के सदृश सुन्दर सौन्दर्य्य सत्यसन्धत्व, रसिकत्व, आदि गुणों के एकमात्र आश्रय-हे पीत-वसन-श्रीप्रियारूप के उद्दीपक होनेसे निरन्तर पीताम्बर धारण करनेवाले! मन्दमन्द मुसक्यानसे आश्रितों के सन्ताप को हरने वाले हे चक्रवर्तीन्द्रनन्दन आपकी जयहो ॥२॥ श्रीजनक-राजनन्दिनीजू की तदनुकूल भावोंसे पूजा करने वाले तथा श्री-प्राणवल्लभाजू से स्वयं भी मन्द मुस्क्यानयुक्त कटाक्षों द्वारा सत्कार पानेवाले तथा हे वरकूजन श्रीप्रियाजू के मनोनुकूल परिहास भाषण करने वाले रावण के पुत्र पौत्रादि वंशसमूह के दाहक (यह तो इस भाव का व्यङ्ग्य है-अर्थात दशमुख वंश के विनाश करने में आप परिश्रान्त हो गये तब उसके शमनार्थ अङ्कमाल आदि की प्रार्थना केलिए श्रीप्रियाजू के समक्ष आपका परिहास भाषण उचित ही है।

एतादृशस्त्वं हरे मम वचसि कवित्वे वश प्रकाशस्व-कीदृशे रसशालिनि त्वदनुरागवति पालिनि सुखप्रकाशेन-भक्तानां तव च पालिके निर्धूतशिछन्नो नतानां भवपाशः

दोऊ दुहूँ के मनोहर माधुरी देखि रहैंजू निमेष बिसारी। दोउ दुहुं मुसुक्यान मई बतियानमें प्राण करैं बलिहारी ॥ दोऊ दुहूँ के रंगे रंग में अंग में रंग बाहि रुचैं रुचिधारी। पीको लगै प्रिय पीत पटूको भटूको लगै प्रिय सांवरि सारी।

संसारबन्धो येनहे तादृश भक्तमात्रपक्षपातिनित्वयि रसिक-भक्तप्रसंगो न चित्रः इति शृंगारशान्तयोर्न शांकर्यम् ।

अर्थ—ऐसे दिव्य कल्याणगुणमण्डित आप ! मुझ हरि (आचार्य) की कविता में निवास करें। रस से परिपूर्ण, एवं आपके अनुराग से युक्त दिव्य सुख प्रदान कर आपके भक्तों की पालिका यह कविता है शरणागतों के भवपाशछेदक-जब कि भक्तमात्र के आप पक्षपाती हैं—तब आपके जो रसिकभक्त हैं उन पर विशेष कृपा क्या विचित्र है ? अर्थात् कुछ भी नहीं इस प्रकार से शृङ्गार तथा शान्त का शांकर्य दोष भी निवृत्त हुआ [अर्थात्-शरणागतों के भवपाश छेदक से शान्तरस की प्रतीति होती है किन्तु रसिकभक्तों की उत्कृष्टता दिखलाने के लिये ही वे शब्द हैं अतः शांकर्य दोष नहीं है]।

वन्दीकृतमुनिवृन्दं मन्दीकृतसुररिपुव्रजंदेम् ।
निरूपमसंमदकन्दं श्रीरामं भजत सच्चिदानन्दम्

अर्थ-जिन्होंने मुनिवृन्दों को वन्दी बना लिया है अर्थात् आपके गुणगणों के परवश अमलात्मा मुनिगण आपकी निरन्तर वन्दना करते हैं, तथा जिन्होंने अपने बल-पौरुषसे राक्षस समूहों को मन्दकर दिया है, जो उपमा रहित है, एवं परमानन्द के मूल हैं ऐसे सच्चिदानन्द देव श्रीचक्रवर्तीन्द्रकुमार श्रीरामभद्रजू का भजन आप सब भक्तगण करें।

भाष्यम्—वन्दीति श्रीरामं भजतेत्यन्वयः कीदृशं बन्दीकृतं स्तावकीकृतं मुनिवृन्दं येनतं स्तुतौगुणान् दर्शयन् विशिनष्टि, मन्दीति मन्दीकृता तुच्छीकृता सुररिपूणां रक्षसां व्रजाः समूहाः ये नतं (येनतं) मन्दीकरणेनेह तेषां विनाशो लक्ष्यः मारणात् वैरीणां प्रतापहानिरेवसुखायेति तथोक्तं देवं सर्वाराध्यम् ।

अर्थ—आप सब भक्त श्रीरामभद्रजू का भजन करें वे कैसे हैं -जिन्होंने मुनिवृन्द को बन्दी किया है अर्थात् आपके गुण गणोंके परवश हुए मुनिगण दीव्यस्तवों से आपकी वन्दना करते हैं१ । स्तुति में गुणोंको दिखाते हैं कि जिन्होंने अपने वल

---

१ यस्यामलं नृपसदस्सुयशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयोदिगिभेन्द्रपट्टम् तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥

श्रीमद्भागवत ९।११।२१

श्रीकोशलराज किशोर का निर्मल यश निखिलपापों को नष्ट कर देने वाला है । वह इतना फैल गया है कि दिग्गजों का श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलता से चमक उठता है । आज (द्वापर काल में) भी बड़े बड़े ऋषि महर्षि राजाओं की सभा में उसका गान करते रहते हैं स्वर्ग के इन्द्रादि देवता पृथ्वी के नरपति अपने कमनीय किरीटों से उनके चरणकमलों की सेवा करते रहते हैं । मैं (शुकदेव) उन्हीं रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीराघवेन्द्रकी शरण ग्रहण करता हूँ ।

पौरुष से राक्षस समूहोंको तुच्छ किया है शत्रुओं को मन्द करना ही उसका विनाश है । मृत्यु की अपेक्षा शत्रुओं की प्रतापहानि सुखकर होती है एवं सभी चेतनों से आराध्यहैं।

निरूपमः समाभ्यधिकशून्यः यः संमदः स्वपादारविन्दोपलम्भकः प्रेमानन्दस्तस्यकन्दं मूलं स्वयमेवसाध्यसाधनभूतं परमोपकर्त्तारमित्यर्थः ननुसाध्यप्राप्त्युत्तरं साधनस्यहेयत्वं दृष्टं तत्राह सच्चिदानन्दमितिस्वरूपतो गुणतश्च ज्ञानसुखरूपमित्यर्थः साध्यस्वरूपोप्यसौ कृपया भक्तानङ्गीकृत्य तेषां साधनसम्पत्तिमापाद्यान्ते प्रत्यक्षी भवतीति नहेयत्वगन्धसम्भावना।

निरूपम अर्थात् अपने से सम अधिक से रहित जो प्रेमानन्द जिसके समान ही कोई नहीं तो अधिक कहां से होगा ऐसे अपने श्रीचरणों के प्रापक जो प्रेमानन्द उसके मूल हैं। स्वयमेव साध्य साधन भूत हैं, आश्रितों के परम उपकारक हैं। यदि ऐसी शंका हो कि साध्य वस्तु की प्राप्ति के पश्चात् साधन हेय हो जाता है ऐसा देखा गया है। उसे कहते हैं कि— सच्चिदानन्दमिति-श्रीरामभद्रजू स्वरूप से तथा गुण से भी ज्ञान रूप सुख रूप हैं। साध्यस्वरूप होते हुए भी वे अपनी कृपा से भक्तों को स्वीकार कर (उपाय स्वरूप बनकर) उन भक्तों की साधन सम्पत्ति सम्पादनकर अन्त में साध्यरूप से स्वयं प्रत्यक्ष हो जाते हैं। अतः हेय दोषों की सम्भावना नहीं है।

जय जय जानकि रघुपतिदयिते।
विधिशिवसनकशुकादिकमहिते ॥१॥
देवि शरणं तव करुणा,
अभिलषितात्रिभुवनगुरुणा । ध्रुव० ॥
पदनखद्युतिविनमितचन्द्रे,
निजपतिपदपरिचरणवितन्द्रे ॥२॥
दशनशिखरकिरणाञ्चितवदने ।
प्रियहृदयार्पितनूतनमदने ॥ ३ ॥
स्थिरचपलावलिवन्दितदेहे
हरिभणिते वस मंजुलगेहे ॥ ४ ॥

अर्थ—हे श्रीजनकराजनन्दिनी ! श्रीरामवल्लभे ! ब्रह्मा शिव सनकादि तथा शुक आदि मुनीश्वरों से पूजिते ! आपकी जय हो, जय हो। हे देवि ! त्रिभुवन श्रेष्ठ श्रीचक्रवर्ती-कुमारजू से अभिलषित आपकी करुणा की मैं शरण हूं। हे आपने पदनखद्युति से चन्द्रमा को नमित करने वाली, अपने प्राणवल्लभजू की चरण सेवा में सावधान आपकी जय हो। जय हो।

हे पके अनार के बीज के सदृश माणिक्य तुल्य दन्त पंक्तियों की कान्ति से सुशोभित मुखवाली, श्रीप्रियतमजू के

हृदय में नित्य नूतन केलि विलास को अर्पण करने वाली। आपकी जय हो हे स्थिर बिजली समूहों से वन्दित विग्रह वाली, अपने सुन्दरगृहके योग्य हरि (आचार्य) की इस कविता में आप वास करें।

भाष्यम्-एवं श्रीरामोत्कर्षरूपं मङ्गलमाचर्य्य श्रीजानकी-उत्कर्षरूपं तदाचरति-जयति हे जानकि जनकराजपुत्रि त्वं जय निजभक्तेषु स्वकृपासम्पत्तिं प्रकटय्य स्वोत्कर्षमाविष्कुर्वित्यर्थः। हे रघुपतिदयिते श्रीरामप्रेयसि अथवा रघुनाथस्यसर्वेश्वरस्यापि त्वांविना व्यर्थीभूतात्मपर्य्यन्तस्य निराकुलस्य स्वसंगामृतदानेन या त्वं पालयित्रीत्यर्थः। आह्लाद-प्रधानसंवित्साररूपा महालक्ष्मी खलु जानकी तयैव तस्यसर्वेश्वरस्य भगवत्ता उदग्रानन्दवत्ता च पूर्णा नेतरथेतिभावः।

अर्थ-श्रीरामभद्रजू का अभ्युदय परक मङ्गलाचरण करके श्रीजनकराजनन्दिनीजू का उत्कर्ष परक मङ्गलाचरणकरते हैं-हे श्रीमिथिलाधिपराजनन्दिनी! आपकी सदा जयहो। निज भक्तोंके प्रति अपनाकृपा वैभव प्रकट कर अपनाउत्कर्ष प्रकटकरें हे श्रीरामवल्लभे! आपके विना सर्वेश्वर श्रीरघुनन्दनजू का भी आत्मपर्यन्त वैभवव्यर्थ हो जाताहै अतः वियोग में व्याकुल होने पर अपने संयोग रूप अमृत दान के द्वारा आप अपने प्राण वल्लभजू को पालन करती हैं। संवित् शक्ति की साररूपा

प्रधान आह्लादिनी शक्ति महालक्ष्मी श्रीमैथिलीजू हैं। इन्ही के साथ सर्वेश्वर श्रीरामभद्रजू की भगवत्ता तथा विपुल आनन्द वत्ता पूर्णतम है अन्यथा नहीं। १

अतोऽग्रेदेवीत्यादि विधीत्यादि विध्यादिभिर्महिते स्वपुरुषार्थसिद्धयेपूजिते तव पुरुषार्थभूतत्वात् नैधिकग्रहणन्यायेन वशीभूतरामां त्वामेव तदर्थं पूजयन्ति इति वा। त्रिभुवनगुरुणा लोकाधिपेनापि रघुनाथेन स्वानन्दाय तव करुणाभिलषिता अतस्तद् भक्तानां सा शरणमस्तु सौन्दर्य्यमाहपदेति पदनखरद्युतिभिश्चरणनखकान्तिभिर्विनमितो नीचीकृतश्चन्द्रो ययाहे तथाभूते। सौन्दर्य्याभिमानी विधुरूर्ध्वमारुढस्त्वत् पादनखावलीं वीक्ष्य स्वयं तुच्छं मत्वाऽधः पततीतिभावः।

अर्थ—अतएव आगे देवि, इत्यादि कहते हैं। ब्रह्मा, शुक,

हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः॥

(श्रीरामतापनी)

स्वर्ण के सदृश विग्रहवाली द्विभुज सभी अलङ्कारों से अलंकृत चिद्रूपिणी कमलधारिणी श्रीजनकराजनन्दिनीजू से आलिङ्गत श्रीकोशलराजकिशोर उस आलिङ्गनजन्य आनन्द से ही पुष्ट हैं।

सनक आदि से पूजित हैं अर्थात ब्रह्मादिक अपने २ पुरुषार्थ सिद्धि केलिए आपकी पूजा करते हैं क्योंकि आप ही सबके पुरुषार्थ भूत हैं, नैधिक ग्रहण न्याय से आप अपने प्रियतम को वश किये हुए हैं अतः उनकी प्राप्ति केलिए सभी लोग आपकी पूजाकरते हैं। अखिललोकाधिप श्रीरघुनन्दन भी अपने आनन्द केलिए आपकी करुणा की अभिलाषा करते हैं, अतएव वह करुणा आश्रितजनों केलिये शरण हो। अब श्रीराजकिशोरीजी के सौन्दर्य्य कहते हैं -आप अपने श्रीचरण नखमणि के प्रकाशसे चन्द्रमा को नीचे करने वाली हैं भाव यह है कि अपने सौन्दर्य का अभिमानी चन्द्रमा ऊपर चढ़कर बैठा था किंतु आपकी पदनखावली को देखकर वह अपनेको तुच्छ समझकर नीचे गिरताहै

पातिव्रत्यमाह-निजेति निजपतेः श्रीरामस्य पदपरिचरणे पादसेवायां विगता तन्द्रा आलस्यं यस्याः हे तथाभूते हे रामपादार्चनजीवने इत्यर्थः अथवा निजपतिना यत्पदपरिचरणंमानकालिक स्वपादनतिरूपं तत्र वितन्द्रा सावधाना तत्सम्बोधनम्। पुनः सौन्दर्य्यमाह दशनेति दशनाः शिखराणीव पक्वदाड़िमवीजतुल्यमाणिक्यानीव दशनशिखराणि 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' इति सूत्रात् समासः तेषां किरणैः अञ्चितं शोभितं वदनं मुखमण्डलं यस्याः हे तथाभूते 'पक्वदाड़िम वीजाभंमाणिक्यंशिखरं विदुः'

इत्यनुशासनात् प्रियेति स्पष्टम् । मानावसानजातेन स्मितेन रामं कामविद्धं करोषीति भावः ॥६ ॥ स्थिरेति स्थिरा चासौ चपलावलिश्च विद्युद्घटातया वन्दितोदेहो यस्याः हे तथाभूते चपलावलेः स्थैर्यस्यैवोपमानता इत्यभूतोपमा व्यतिरेकेण व्यज्यते । ईदृशी त्वं हरि भणितेऽस्मिन् कवित्वे वस प्रकाशस्व तत्रेत्यर्थः । कीदृशे मञ्जुलगेहे त्वत्प्रकाशयोग्यास्पदे-रसभावालंकारशालित्वात् ।

अर्थ-अब श्रीराजकिशोरीजूकापतिव्रताधर्मका वर्णनकरते हैं-श्री प्राणवल्लभजू के चरणोंकी सेवामेंसर्वदा आलस्य रहित रहती हैं। अर्थात् श्रीप्रियतमजू का पादार्चन हीं आपका जीवन है-अथवा अपने प्राणवल्लभजू से मानकालमें अपने पादारविन्दों में प्रणाम कराने में सावधान हैं। पुनः सौन्दर्य वर्णन करते हैं आपकी दन्तावली पके हुए अनारके वीजके सदृश माणिक्यवत् है। उसके किरणों से सुशोभित आपका मुखमण्डल है। (पके हुए अनार बीजके समान माणिक्य को शिखर कहते हैं।

प्रिय—इसका भाव मूल में ही स्पष्ट है मान के पश्चात् अपने मन्द हास से प्रियतम को काम परवश करती हैं ॥ ३ ॥ स्थिर बिजली समूह से वन्दित विग्रह वाली अर्थात् आपके मंगल मय विग्रह से गौर प्रकाश पुञ्ज चारों ओर देख पड़ते हैं उन्हीं की उत्प्रेक्षा करते हैं मानो स्थिर होकर दामिनी वृन्द

आपकी स्तुति करते हैं। ऐसी रूपगुणविशिष्ट आप मुझ हरि (आचार्य) की कविता में निवास करें अथवा प्रकाश करें। रस भावों एवं अलङ्कारों से युक्त होने से आपके निवास योग्य स्थल है। अतएव मञ्जुल (कोमल) गृह है।

मधून्मदैर्वीक्ष्य मधुव्रतौघै-
विगुञ्जितां कुञ्जततिं सरय्वाः।
रामोविहर्तुं मिथिलेन्द्रपुत्र्या-
सार्धं वितेने तरुणीसमाजम् ॥ १

आगत्य सीतान्तिकमाशुकाचि-
च्चन्द्राभिधा चारुतनुर्वयस्या।
अशोकवाटीघटितानि भर्तु-
र्निरूपयामास विचेष्टितानि ॥२॥

अर्थ—मधुमत्त मधुकरवृन्द से गुञ्जायमान श्रीसरयूतट वर्ति कुञ्जगृहों को देखकर श्रीकौशलराजकिशोर ने श्रीमिथिलेश-राजकिशोरीजू के साथ विहार करने की इच्छा से नायिकाओं के समाज की रचना की। १ ॥

परमसुन्दरी श्रीचन्द्रासखी ने अतिशीघ्र श्रीप्रियाजू के समीपआकर श्रीअशोकवाटिका में होने वाली श्रीप्रियतमजू की चेष्टाओं का वर्णन किया।

भाष्यम्-एवं सपरिकरमङ्गलमाचर्य्य तत्फलं वासन्तिकविहारवर्णनं कर्तुमाह मध्विति-रामो मिथिलेन्द्रपुत्र्या साधं विहर्तुं अशोकवनिकायां तरुणीसमाजं तेने विस्तारितवान् तरुण्यश्चैताः नृत्यगीतापूर्वनर्मप्रहेलिकादिप्रवीणाः भोग्यपत्न्यश्च दास्यश्च बोध्याः। उद्दीपनमाह-मधून्मदैरिति मधुमत्तैर्भृंगसंघैः शब्दितांसरय्वाः निकुञ्जश्रेणीं दृष्ट्वा, तति शब्देनप्रायः सरयूतटवर्तिनोऽतिदीर्घवाटीमध्यस्पृशश्च निकुञ्जाः बोध्याः तथैवसौन्दर्य्यात्—

अर्थ—इस प्रकार सपरिकर श्रीप्रियाप्रियतमजू का मङ्गलाचरण कर उसका फल वसन्तकालिक विहार वर्णन करते हैं। मधु-इस श्लोक से श्रीप्राणबल्लभ ने श्रीप्राणवल्लभाजू के साथ विहरने की इच्छा से श्रीअशोकवाटिका में तरुणीसमाज की रचना की। ये सब नायिकायें नृत्य गानमें तथा नर्महास एवं प्रहेलिका आदि में परमप्रवीणा हैं। इन्हें भोग्यपत्नि एवं दासी समझना चाहिए। अब रसका उद्दीपन वर्णन करते हैं-मधुपान से प्रमत्त भ्रमर समूह द्वारा गुञ्जायमान श्रीसरयू के निकुञ्ज बृन्द को देखकर श्रीप्राणवल्लभ के हृदय में रसका उद्दीपनहुआ इसलिए बिहार करने लगे। "तति,, इस शब्दसे प्रायः श्रीसरयू तटवर्ति अतिविशाल वाटिकाके मध्यतक स्पर्श करनेवाले निकुञ्ज समूह जानना चाहिए। उसी तरह सौन्दर्य होने के कारण।

नृत्यगीतादिसामग्रीसम्पादनोत्तरं समाजशिरोमणेः श्रीसीतायाः समाह्वानं सुशोभमिति तां विनैव समाजरचना श्रीरामेण कृता तां दृष्ट्वैवोत्तरलचित्ता तत्र जानकी मानिनीषु चन्द्रासखी तां प्रत्यागत्य तद् रचनामवर्णयदित्याह आगत्येति- चन्द्राभिधा काचिद् वयस्या सखी सीतान्तिकमाशु त्वरितमागत्य प्राप्यभर्तुः श्रीरामस्यविचेष्टितानि क्रीडाः निरूपयामासोवाच कीदृशी चारुतनुः कमनीयदेहा कीदृशानि चेष्टितानि तत्राह अशोकेति तस्यां जातानीत्यर्थ उत्तरत्र, मत्क्रीड़ैकास्पदैतस्यां मां बिनाऽन्याभिरसौ विहरन्मदवज्ञांकरोतीति महान् खेदः। चन्द्रादयश्च सख्यः अगस्त्यसंहितादौ- ख्याताः ॥ २ ॥

अर्थ—नृत्यगीत आदि सामग्री सम्पादन करनेके पश्चात् समाजशिरोमणि श्रीराजकिशोरीजू का आवाहन परम आवश्यक था श्रीप्रियतमजू ने उनके विना ही समाजकी रचना की। उस रचना को देखकर श्रीचन्द्रासखी ने मानिनियों में परम सरस हृदया श्रीराजदुलारी के प्रति उन रचनाओं का वर्णन किया। "आगत्य" इस श्लोकसे श्रीचन्द्रा नामक किसी सखीने श्रीप्रियाजू के समीप शीघ्र आकर श्रीप्रियतम की चेष्टाओं का (क्रीड़ा) निरूपण किया। कैसी हैं वह सखी! कमनीय विग्रह वाली हैं। कैसी चेष्टायें हैं उसपर कहते हैं कि श्रीअशोकवाटिका

में श्रीप्राणवल्लभजू जो अन्य नायिकाओं के साथ रमण कर रहे हैं इन्हीं चेष्टाओं का वर्णन किया। एकमात्र मेरे क्रीड़ा के स्थानरूप श्रीअशोकवाटिका में मेरे विना श्रीप्रियतमजू अन्य नायिकाओं के साथ रमण करते हुए मेरा अपमान करते हैं, यह महान् खेद का विषय है।

श्रीचन्द्रा आदि सखियोंका नाम श्रीअगस्त्य संहिताआदि ग्रन्थोंमें वर्णित है। यथा चन्द्रा चन्द्रकला चान्द्री चन्द्रकान्ताच चन्द्रिका। चन्द्रामुखी चकोरीच चन्द्रचूड़ाववोधिनी इत्यादि।

(विभासरागे त्रितालीताले)

मृदुलरसालमुकुलरसतुन्दिलपिकनिकरस्वन-भासे। माधविकासुमनोनवसौरभनिर्भरसंकुलिताशे॥१॥ बिलसति रघुपतिरतिसुखपुञ्जे।ध्रु०। निर्मलमलयजकुमकुमपंकिलतनुरिह बरतनु कुंजे। विषमविशिखकरनखरनिचयसमकिंशुककुसुमकराले॥ मानवतीगणमानविदारिणि चञ्चलमधुकरजाले॥ २ ॥ धृतमकरन्दसुमन्द-गन्धवहभाजिविराजितशोभे॥ विविधवितान-कान्तिपरिशीलनिजनितयुवतिजनलोभे॥ ३॥

हरिपरिरचितमिदंमधुवर्णनमनुरघुनाथमुदारम् ।
पिबत बुधामधुमधुरपदावलिनिरुपमभजन-
सुधारम् ॥ ४ ॥

अर्थ—हे सुन्दरि ! निर्मल चन्दन और कुमकुम से लिप्त (शृङ्गारित) विग्रह वाले श्रीप्राणवल्लभ-अत्यन्त आनन्द समूह से युक्त इस सर्वोत्तम कुञ्ज में बिलास कर रहे हैं। कैसा कुञ्ज है ? सुकोमल आम्र पुष्पों (मञ्जरियों) के रस पान से पुष्ट कोकिलसमूहों के शब्दों से सुशोभित है तथा बासन्तीलता के पुष्पों के नूतन सुगन्ध से वहां की दिशायें परिपूर्ण हैं।

पुनः कन्दर्प के नख समूहों के सदृश पलाश पुष्पों की तीक्ष्णता से युक्त है और मानवती नायिकाओं का मान भञ्जन करने वाला है तथा चञ्चल मधुप समूह गुञ्जार कर रहे हैं। पुष्पों का मकरन्द लेकर वायु धीरे २ चल रही है, इससे कुञ्ज में अत्यधिक शोभा हो रही है। अनेक रंगों के बितान (चँदोवा) तने हुए हैं, जिनकी कान्ति देखकर नायिकाओं का मन लुब्ध हो जाता है। मुझ हरि (आचार्य) का निर्मित यह वसन्त वर्णन उदार श्रीकौशलराजकिशोरजू के लक्ष्य करके मधु से भी मधुर पदावली में किया गया है। उपमा रहित है तथा यह भजनरूपी अमृत रस प्रदान करने वाला है, अतः हे पंडित-गण ? आप सब इस सुधा का पान करें।

भाष्यम्—

चन्द्रा किमुच तद् वर्णयति मृदुलेति, हे वरतनु ! सुन्दरि सीते इह निकुञ्जे रघुपतिर्विलसति अंगुलिनिर्देशादावेशाद्वा प्रत्यक्षवन्निर्देशः कीदृशः निर्मलेन मलयजमिश्रितेन कुमकुमेन पंकिलालिप्तातनुर्यस्य सः चन्दनविलेपनकृताच्छविस्तस्याः उत्कण्ठा हेतुरूदर्के मानहेतुश्च।

श्रीचन्द्रासखी क्या वर्णन करती हैं उसे ग्रन्थकार कहते हैं-हे सुन्दरि ! श्रीराजनन्दिनि ! इस निकुञ्ज में श्रीप्राणवल्लभजू बिहार कर रहे हैं यहां अंगुलि निर्देश से तथा आवेशवशात् प्रत्यक्ष के सदृश कहती हैं। कैसे प्राणवल्लभ हैं निर्मल, मलयज मिश्रित कुमकुम से विलेपित विग्रहवाले हैं, अर्थात चन्दन, केशर कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्यों को मिलाकर उस अंगराग द्वारा श्रीप्रियतमजू का रससारसर्वस्व श्यामसुन्दर श्रीविग्रह शृङ्गारित है। यहां पर चन्दन विलेपन से युक्त छवि का बर्णन श्रीप्रियाजू की उत्कण्ठाके हेतु तथा मानोदय केलिए है।

कीदृशे कुञ्जे-अतिसुखपुञ्जे निविड़ानन्दवर्षिणि पुनः कीदृशे मृदुलानां रसालमुकुलानामाम्रपुष्पाणां ये रसा मकरन्दास्तैस्तदास्वादैस्तुदिलानां पुष्टानांपिकनिकराणां स्वनैर्भासःशोभा यस्य तस्मिन् पुनः कीदृशे माधविकानामाम्रानां पादशिखमावेष्ट्योल्लसन्तीनां वासंतीनां यानि सुमनांसि

पुष्पाणि तेषां ये नव सौरभनिर्भरा अयातयामा सौगन्ध्याति-शयास्तै संकुलिता पूरिताः आशा दिशो यस्य तस्मिन्। सुर-ताशक्तयुवमिथुनभावेन बासन्तीरसालवर्णनमुत्कण्ठाहेतु-रुदर्के दुःखहेतुश्चेतिबोध्यम्।

श्रीगन्थकार कुञ्ज की शोभाका वर्णन करते हैं-कैसा कुञ्ज है? जहां पर सदा एकरस परमानन्दकी वर्षा होती है? तथा कोमल आमकी मञ्जरियों का रस (मकरन्द) पान से पुष्ट कोकिलाओं के कलरव से सुशोभित है पुष्पित वासन्तीलतायें आमकी शाखाओं से लिपटी हुई शोभा पारही हैं उनके पुष्पों के नूतन अर्थात् पुष्पों को विकसित हुए अभी एकप्रहर भी नहीं बीता है अतएव नूतन सौरभ की अधिकतासे समस्त दिशायें परिपूर्ण हैं। सुरता-शक्त युव मिथुनभाव से बासन्तीलताओं के साथ आमका वर्णन उत्कण्ठा तथा मान केलिये जानना चाहिये।

हमरे वन प्रमोद रसदानी॥

विविधकुञ्ज द्रुमलता सुहावनि निरखत छवि मनमानी।

योग ज्ञान अरुनेम दानव्रत इन सब की न प्रधानी॥

प्रेमलक्षणा भक्ति शिरोमणि चहुं ओर सरसानी।

सरयू सोम विटप रत्नागिरि छवि नहि जात बखानी॥

युगल प्रिया यह रस विलासपथ सन्त कृपा ते जानी।

(श्रीयुगलप्रियाजी)

पुनः कीदृशे कुञ्जे विषमविशिखस्य पञ्चबाणस्य कामस्य यः करनखरनिचयः पाणिजबृन्दं तस्य समानि वक्रतारुययोग्यात्तुल्यानि यानि किंशुककुसुमानिपलाशपुष्पाणि तैः कराले भाषणे चञ्चलभ्रमतमधुकराणां जालं बृन्दं यत्रतस्मिन् मानवतीनांमानिनीनां गणस्य समूहस्य मानं विदारयतीति तस्मिन्–ईदृशः कुञ्जो यत्र कामो भ्रमरजालं विस्तीर्य मानिनीर्निरूध्यर्किंशुकपुष्पात्मकैर्निजनखैस्तासां मानं विदार्यताः शुद्धाः स्वप्रबणाः करोतीति नाद्यमानेन जीवितव्यम् तस्मात् स्वामिन्या तु सत्वरं चलितव्यमितिभावः ॥

अर्थ—पुनः कैसा सुभगकुञ्ज है-पञ्चबाण वाले कामदेव के नखसमूह के सदृश नूतन बिकसित होने से टेढ़े पलाशपुष्पों की करालता (अर्थात् मानिनियों की दृष्टिमें भयानक) तथा पुष्पोंके मकरन्द पानकर चंचल भ्रमरों का बृन्द है जहां ऐसे कुञ्ज में बिहार कर रहे हैं (ये सभी विशेषण कुञ्ज के ही हैं)तथा मानिनीनायिकाओं का जहां पर मानमर्दन होरहा है। भाव यह है कि कामदेव भ्रमर जाल को बिछाकर मानिनियों को घेर कर पलाश पुष्परूपी अपने नखों से उनसबों का मान बिदीर्ण कर मानिनियों को अपने बशमें कररहा है, अर्थात् सचेत् कर रहा है कि आजमान करके नायिकाये' नहीं जी सकती हैं - अतः हे श्रीस्वामिनीजू आपको तो शीघ्र ही चलना चाहिये।

पुनः कीदृशे, धृतोमकरन्दो येनासौ अतएव भाराक्रान्त्या सुमन्दोऽतिधीरश्च यो गन्धवहो दाक्षिणात्यवातस्तं भजतीति तस्मिन् इह वायोर्मान्द्यसौगन्ध्यशैत्यानि दर्शितानि, विराजिताशोभा यस्मिन्–तथाभूते 'यत्र शोभा मूर्तिमतीव चकास्ति तत् कुञ्जं शीघ्रं प्रेक्षणीयमिति भावः। तदेवाह विविधेति विविधानि शुक्ल–नील–गौरारुण–कर्बुराणि मुक्ताजालावलम्बि प्रान्तानि मन्दिरान्तरालचत्वरेषुनिबद्धानि यानिवितानानि चंद्रातपाःकान्तीश्छवीः परिशीलयति धारयतीति तस्मिन्, जनितो युवतिजनानां लोभो येन तस्मिन् युवतिरत्नस्य तव तत्र त्वरितैव गतिरुचितैवेतिभावः कविराह हरिरिति हे बुधाः श्रीराघवेन्द्रविहाररहस्यज्ञाः रघुनाथमनुलक्षीकृत्य रामविषयकमित्यर्थः हरिणापरिरचितं कृतमिदं मधोर्वसन्तस्यवर्णनं यूयं पिबत सादराः शृणुत उदारं महत् मधुतो मध्वीकात्–मधुरा इष्टापदावलिर्यत्र तत् निरूपमां भजनसुधां राति ददातीति तत्, अथवा निरूपमानां भजनानां, गानश्रवणमननानां सुधारायतस्तत्।

अर्थ—पुनः कैसा कुञ्ज है–पुष्पों के मकरन्दों को धारण करने के भार से दबी हुई अत्यन्त मन्द–मन्द वायु चल रही

है यहां वायु में शीतल, मन्द सुगन्धगुण दर्शित किये गये हैं। जहां पर शोभा मूर्तिमती होकर विराज रही है ऐसे मनोहर कुञ्ज का आप शीघ्र दर्शन करें--यह भाव है। श्वेत, नील, गौर कर्वुर आदि रंगोंके वितान-चंदोवा (जिसमें मुक्ताकी मालाओं की झालरें लगी हुईं हैं) छविपूर्ण रासमंडप के प्राङ्गण में तने हुए हैं, जिसकी कान्ति को देखकर नायिकाओं के मन लुब्ध हो जाते हैं। हे युवतीमणि ! ऐसे कुञ्ज में अतिशीघ्र आपका शुभ-गमन होना आवश्यक है।

कवि श्रीहरिआचार्य जी कहते हैं कि हे श्रीप्रिया-प्रियतमरहस्य के जानने वाले पण्डितगण ! श्रीचक्रवर्तीन्द्रनन्दनजू के विषयमें वसन्तवर्णन रूप यह मेरी रचना आपसब सादर श्रवणपुटों द्वारा पान करें। यह मधुसे भी अत्यधिक मधुर है तथा निरूपम भजनरूपी अमृतरस को देनेवाला है अथवा निरूपम- भजन, गान, श्रवणमनन रूपी सुन्दर प्रवाह (झरनें) जहां से चल रहे हैं।

श्रुत्वा वसन्तश्रियमाशुकान्तां,
जातास्पृहासौ जनकात्मजासीत्।
अथाब्रवीच्चन्द्रकला चलाक्षी,
सानन्दमेनां चरितानि पत्युः॥

अर्थ--वसन्त शोभावर्णन सुनकर श्रीराजकिशोरीजू श्री·

प्रियतमसे मिलनेकी इच्छुक हो गईं। अथवा श्रीजनकराज-नन्दिनी जू को उस शोभा का दर्शनकी इच्छा हुई। पश्चात् चञ्चल नेत्रवाली श्रीचन्द्रकलाजी आनन्द युक्त होकर श्रीप्राण बल्लभजू का चरित कहने लगीं।

(इस श्लोकमें पूर्वार्द्ध की पंक्ति पूर्वचरितसे सम्बन्धित है तथा उत्तरार्ध की पंक्ति उत्तरचरित से सम्बन्धित है।

भाष्यम्—श्रुत्वेति एवं वसन्तश्रियं चन्द्रावर्णितां वसन्तकृतवनशोभां श्रुत्वासौजनकात्मजा-आशु-शीघ्रं जाता-स्पृहा तां द्रष्टुकामाभूत्। अथानन्तरं जानक्याः विलम्बं दृष्ट्वा चन्द्रकलाख्या अन्या सखी तस्मात् समाजादागता सा आनन्दं यथा स्यात्तथा एनां सीतां प्रति भर्तुः श्रीरामस्य चरितानि चेष्टाः अब्रवीत्, "सानन्द" मिति तस्य सीता-मयत्वदर्शनादितिभावः।

अर्थ—श्रीचन्द्राजी से वर्णित वसन्तकी वनशोभा सुनकर श्रीजनकराजनन्दिनीजू को शीघ्र उस शोभा को देखने की इच्छा हुई। तत्पश्चात् श्रीराजकिशोरीजू को आने में विलम्ब देखकर श्रीचन्द्रकला नामकी अन्य सखी उससमाज से आईं। और श्रीस्वामिनीजू के आनन्द केलिए आपसे श्रीप्राणवल्लभाजू के चेष्टायुक्त चरित्रोंको आनन्दपूर्वक वर्णन करने लगीं।

श्रीचन्द्रकलाजी श्रीप्रियतमजूको श्रीप्रियाजू में तन्मयदेख आईं हैं अतः श्रीप्रियारसलीन श्रीप्रियतमकी उन चेष्टाओं को आनन्दपूर्वक वर्णन करनेलगीं।

रामकली रागेत्रिताली ताले—

क्रीडति रघुमणिरिहमधुसमये,

पश्य कृशोदरि भूपतितनये ॥१॥

जानकि हे वर्द्धितयौवन मानमये ॥ध्रु०॥

कापि विचुम्बति तं कुलबाला,

गायति काचिदमुं धृततालां ॥२॥

कामपि सोऽपि करोति सहासां,

कलयति कांचन कामविकाशाम् ॥३॥

हरिवर्णितमिदमनुरघुवीरं,

निवसतु चेतसि सरस गभीरम् ॥४॥

अर्थ—हेकृशोदरि श्रीजनकराजनन्दिनीजू ? हे नवयौवनशीले हे मानिनि, ! देखिये यहां बसन्तसमय में श्रीरघुवंशभूषण जू क्रीड़ा कर रहे हैं। कोई तरुणी प्रियतम को चुम्बन करतीहैं, कोई नायिका ताल बजाकर आपसे गान कराती हैं प्रियतम भी किसी नायिकाके साथ हास विलास करते हैं, किसी नायिकाको काम परवश करते हैं। श्रीप्रियतमप्राणवल्लभ रघुवंशमणिजू के विषय में यह प्रियानुराग परवश सरस और भावपूर्ण होने

से अत्यन्त गम्भीर श्रीहरिआचार्य द्वारा वर्णित यह पद्य रसिकों के हृदय में निवास करे।

भाष्यम्—चेष्टितानि वर्णयति क्रीडतीति हे कृशोदरि क्षीणमध्ये हे भूपतितनये नृप पुत्रि श्रीसीते! रघुमणिः क्रीड़ति त्वं पश्य, अत्र रघुमणिं पश्येति कर्मत्वंनस्यात् "अपादानसम्प्रदानकरणाधारकर्मणां कर्तुश्चान्योन्य सन्देहे प्रमेकंप्रवर्तते,, इत्युक्तेः पश्य मृगो धावतीतिवत् हे जानकीति पुनरूपादानं तेषां नाम्नामति प्रेष्ठत्वात् ॥१॥ कथं क्रीडतीत्यत्राह कापीतिकापि पुरोवर्तिनी त्वादृशी कुल-वाला हे प्रिये जानकिमां विचुम्बेति स्मरातुरेण रामेणाभ्य-र्थितावलात्तेन चुम्बिता च त्वद्दर्शनावधि मध्यवर्तिनं सम-यमतिवाहयितुं तं विचुम्बति।

अर्थ—अब श्रीप्राणवल्लभजू की चेष्टाओं को वर्णन करती हैं। हे कृशोदरि श्रीराजनन्दिनि! श्रीरघुवंशमणिजू क्रीड़ा कर रहे हैं आप देखिए 'यहाँपर" रघुमणि में कर्म संज्ञा नहीं हुई है "पश्य मृगो धावति, के सदृश। हे जानकि इस नाम का पुनः कथन से श्रीप्रियाजू के नाम अतिप्रिय होने से बारम्बार उच्चारण कर रही हैं श्रीप्रियतम किस प्रकार क्रीड़ा कर रहे हैं? अपने सामने आपके सदृश कोई कुलीन नायिका को श्रीप्राण

वल्लभजू आपही को जानकर "हे प्रिये ? श्रीजनकराजनन्दिनीजू मुझे आप चुम्बनकरे" इसप्रकार उनको चुम्बन केलिए प्रार्थना करते हैं, अतः बलात् वह नायिका उनको चुम्बन करती हैं। आपके दर्शन की अवधि पर्य्यन्त मध्यवर्ती समय को बिताने केलिए उनको चुम्बन करती हैं।

भाष्यम्—काचिदपरातंरामं अभिनवयौवनविजृम्भित-मधुरिमाणं तादृशचेष्टं गायति तालंवादयंतीसती कामिति सोऽपि श्रीरामोऽपि अन्यां कामपि तरुणीं सहासां करोति, बलादेव स्प्रष्टुकामे तस्मिन् अपसरन्तीं तां वीक्ष्य हे प्रेयसि सीते नवनीतकोमलाङ्ग्यास्तेहृदयं कठिनकुचसङ्गादतिकठोरं-जातं यन्मयि न दयसे-इति व्याहरन्तं तं प्रति नाहं सीता किन्त्वियंसेति विकसितां स्वर्णयूथीं दर्शयन्ती सा हसतीतिभावः

अर्थ—कोई दूसरी नायिका प्राणसंजीवनजू को नवतारुण्य से विकसितमाधुर्य सम्पन्न देखकर तथा उसी अवस्था के अनुकूल रसमय चेष्टाओं से युक्त देखकर ताल बजाती हुई गान करती है (अर्थात् सौन्दर्य--माधुर्य-लावण्यामृतसागर श्रीप्राणवल्लभजू के नख शिख सर्वाङ्ग सौन्दर्य का गान करती हैं।) किसी नायिका को श्रीप्रियतमजू भी हास युक्त कर देते हैं। बलात् उसी नायिकाको आप स्पर्शकरना चाहते हैं तोवहभागतीहैं तब आप कहते हैं कि हे प्राणवल्लभे श्रीसीते ! नवनीत से भी

कोमल आपका हृदय था क्या? कठिन उरोज के संसर्गसे अति कठोर हो गया है जो मुझपर दया नहीं करती हैं जब श्रीप्राण-वल्लभजू ऐसे बचन कहते हैं तब वह नायिका कहती है कि मैं श्रीराजकिशोरीजू नहीं हूँ किन्तु ये श्रीराजनन्दिनी जू हैं ऐसा कहकर स्वर्णजूही को दिखलाकर वह हँसती है। यह भाव है।

भाष्यम्—कांचनान्यां काम विकाशां कलयतिकरोति हे प्रिये किमिति मां वञ्चयसि किमेतां प्रफुल्लस्वर्णयूथीं नहि वेद्मि त्वां वा जानकीं न परिचिनोमि इत्यभिधाय बला-देवार्पितैर्नखरक्षतश्लेषादिभिस्तां विकसितकामां करोति इति भावः। ततश्चसर्वत्र त्वामेव पश्यन्नसौवर्तत इति भावः। अतस्त्वरयाभिसृत्य तं सुखयेतिभावः। कविराह हरिरिति रघुवीरमनुलक्षीकृत्य वर्णितमिदं तस्य सीतामयमनस्त्वं कवि-त्वं सरसं सीतानुरागत्वात् गभीरं गूढ़ार्थत्वात्॥

अर्थ—किसी अन्य नायिका के हृदय में प्रेमरस का विकाश करते हैं। हे प्रिये क्यों मुझसे वञ्चना करती है क्या? मैं इस विकसित स्वर्ण जूही को नहीं जानता हूँ! और आप श्रीप्रियाजू हैं अतः आपको नहीं पहचानता हूँ ऐसा कहकर बलात् नखरक्षत आलिङ्गन के द्वारा उस नायिका को प्रेमरस परवश करते हैं, अतः सर्वत्र आपही को देख रहे हैं। "अर्थात् श्रीप्रियतम के तन-मन-प्राणों में इस समय आपही निविष्ट हैं

अतः अन्य सखी को भी भ्रमसे आपही को समझकर उसके साथ आपके योग्य रसमय चेष्टाओं से रमण कररहे हैं। वह नायिका भी जबतक आप नहीं जा रहीं हैं तबतक का समय बिताने केलिऐ श्रीप्रियतम के साथ आनन्द कर रही हैं।" अतएव आप शीघ्र चलकर श्रीप्राणबल्लभजू को सुख प्रदान करें। श्री हरि आचार्यजू महाराज कहते हैं कि श्रीचक्रवर्तीन्द्रनन्दनजू के विषय में वर्णन किया गया श्रीप्रिया जू के विषय में तन्मयता युक्त, प्रियानुराग मय होने से अत्यन्त सरस तथा गूढ़ार्थक होने से गंभीर यह पद रसिकगणों के हृदय में निवास करे अथवा रसिकगण इस अमृतरस का पान करें।

अवगत्य भर्तुरनयं सखीमुखाद् वरवर्णिनी
प्रियतया विदीपिता स्फुरितावमानपरिलीढमा-
नसा विततानमानमपि मंजुभाषिणी ॥ १ ॥
सीता सुखसमतीता रामकथाभामभासुरस्वान्ता।
दीनाक्वचिदपिलीना चन्द्रकलां साकलाश्रितां
प्राह ॥ २ ॥

इति श्रीहर्य्याचार्यविरचिते श्रीजानकीगीते श्रीजानकीमान-
विधानंनाम प्रथमः सर्गः॥१॥

अर्थ--अपनी सखी श्रीचन्द्रकलाजू के मुख से श्रीप्रियतमजू की अनीति सुनकर अपना अपमान समझकर तरुणीमणि श्रीराजकिशोरीजू का हृदय प्रणय कोप से युक्त हो गया। अतः मञ्जुभाषिणी होती हुई भी मान कर गईं।

श्रीराजनन्दिनीजू श्रीप्रियतम की कथा सुनकर सुख चले जाने से अत्यन्त दुखी होगईं तथा प्रणयकोप से उनका हृदय युक्त होगया। अतः मानकुञ्ज के किसी एक कोने में बैठकर अत्यन्त प्रवीणा श्रीचन्द्रकलाजू से ऐसे बचन कहने लगीं।

भाष्यम्—इत्थं चन्द्रकलया सीतामयमनस्त्वं तस्याः हर्षमुत्पादयितुमुक्तं सा तु सर्वं विपरीतं मत्वा मानं चकारेत्याह।अवगत्येति भर्तुः श्रीरामस्यानयं अन्याङ्गनाप्रसङ्गरूपं सखीमुखादवगत्य-ज्ञात्वा वरवर्णिनी तरुणीमणिः श्रीजानकी मानं विततान मृदुलेत्यादि वसन्तवर्णनश्रवणजं हर्षमपि दुःखात्मना परिणामितवतीतिभावः कीदृशी प्रियतया प्रेम्णा विदीपिता स्निग्धैव खलु स्नेहविद्धाचरणेन स्नेहितेकुप्यतीति स्नेहाभिमानजातकोपकृतारुणिमाराजमानमुखमण्डला बभूवेत्यर्थः।

अर्थ—श्रीमती चन्द्रकलाजी ने श्रीप्राणवल्लभजू की श्रीप्यारीजूमें तन्मयता का वर्णन प्यारीजू को हर्ष बढ़ाने के लिये किया किन्तु आप सभी बातें विपरीत समझकर प्रणयकोप पर-

वश मान कर गईं१। ग्रन्थकार इस विषय को "अवगत्य" इस श्लोक से वर्णन करते हैं—श्रीप्राणसंजीवनजू का अन्य नायिकाओं के साथ विहार सखी के मुख से सुनकर तरुणीमणि श्रीराजकिशोरीजू मान कर गईं। "मृदुलरसालमुकुलरसतुन्दिलपिकनिकरस्वनभासे" इस पद में वसन्त का वर्णन सुनने से जो हर्ष हुआ था वह हर्ष भी इस समय दुःखरूप में ही परिणत होगया (भाव यह है कि-श्रीप्यारे के संयोग में जो जो वस्तुयें रसोद्दीपन करती हैं वे ही वस्तुयें वियोग में दुःखप्रद हो जाती हैं। यह आगे 'ताराधिपश्चंदन शैलवातः' इस श्लोक में ग्रन्थकार स्वयं वर्णन करेंगे—उद्दीपन सामग्री 'मृदुलरसाल" पदमें वर्णित है। प्रणय उत्कर्ष के कारण श्रीप्रियाजू कोप कर गईं। स्नेहाभिमानजन्य कोपसे आपका मुखमण्डल कुछ अरुणिमा युक्त होकर अत्यन्त सुशोभित होगया।

---

१ न विना विप्रलम्भेन शृङ्गारः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागोऽभिवर्धते॥ भरताचार्य॥

विप्रलम्भ के बिना शृंगार की पुष्टि नहीं होती है कषायितवस्त्र में अधिक रंग बढ़ता है।

'अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभावकुटिला भवेत्।
अतो हेतोरहेतोश्च यूनोर्मान उदञ्चति॥"

सर्प के सदृश प्रेम की गति स्वभाविक टेढ़ी होती है इसीलिये कारण के बिना भी मान का उदय हो जाता है। अर्थात् अधिक स्नेहके कारण ही मानरस का प्राकट्य होता है।

भाष्यम् – कोपचिह्नमाह-स्फुरितो दीप्तोयोऽवमान स्तेन परिलीढं ग्रस्तं मानसं यस्याः सा कीदृशी मंजु मधुरं भाषितु शीलंयस्याः सा तथाभूतापि मानं ततानेतिविप्रियं रूक्षाक्षरमभाषतेति भावः त्वां विनाहं न भवामि नान्या च मे रोचते इत्यसकृद्यदवादीत्तत् सर्वं कृतकमेव यदीदृशं यं तस्य मत्सख्यश्च यूयं स्थूलधियस्ततः कौटिल्यं किं जानीथ यत् प्रावीण्यवतीमपि मामवञ्चयत् तदहं मिथिलेन्द्रनगरं प्रयामीति रूक्षभाषणंबोध्यम्-मंजुभाषिणी छन्दश्च ॥१॥

अर्थ – कोपचिन्ह वर्णन करते हैं:—आपका हृदय श्री-प्रियतमकृत तिरस्कार से युक्त होगया अर्थात् आप विचार रही हैं कि प्यारे तो मेरा तिरस्कार कर अन्य नायिकाओं के साथ विहार कर रहे हैं इस भावसे आपका हृदय परिपूर्ण है। अत-एव मञ्जुभाषिणी होती हुई भी इस प्रकार अप्रिय और रूखे वचन कहने लगीं "आपके विना मैं नहीं जीवित रह सकता हूं आपके अतिरिक्त अन्यनायिका मुझे सुख नहीं देसकती इत्यादि ऐसे वचनोंको अनेकवार जो उन्होंने कहा वे सब ऊपरसे वञ्चन मात्र हैं उनका छल आप सब भोली भाली मेरी सखियां क्या जान सकती हैं जब अत्यन्त प्रवीणा मुझ से भी वञ्चना करते हैं। अतः मैं श्री पिताजी के गृह श्रीमिथिलाजी चली जाती हूं। यही रूक्ष भाषण जानना चाहिए। मंजुभाषिणी छन्द है।

एवं कोपोत्तरलितचित्ता तस्मादुपवेशनादुत्थाय मानमन्दिरं प्रविवेशेत्याह सीतेति सुखसम्प्रतीताऽतिदुःखिता रामकथायां चन्द्रकला निवेदितायां यो भामः क्रोधस्तेन भासुरं प्रज्वलत् चित्तं यस्याः सा तामसहमानेत्यर्थः दीना तेनाहमधुनोपेक्षिता सौभाग्यविरहिताभवमितिदैन्यवती लीलागृहकोणे लीना लग्नैवसती क्वचिदपि मन्दिरे एवं भूता सीता चन्द्रकलां प्राह प्राणाः यदर्थमित्यादि उत्तरग्रन्थमुवाचेत्यर्थः।

अर्थ—इस प्रकार कहती हुईं प्रणयकोप से युक्त जहां बैठी थीं उस आसन से उठकर मान कुञ्ज में प्रवेश कर गईं। इस बात को "सीतेति" इस श्लोकसे कहते हैं:-श्रीराजकिशोरीजू अत्यन्त दुखितहैं। श्रीमतीचन्द्रकलाजूने प्रियाजूके प्रति अनुराग के विषयमें जो प्रियतम की दीव्य कथायें सुनाई हैं उसके श्रवणसे प्रणयकोप और भी वृद्धि को प्राप्त हो गया, अतः प्रणयकोपाक्रान्त हृदय से यह विचार कर रही हैं कि "प्रियतम ने मेरी उपेक्षा की है अतः उनसे तिरस्कृत होने से मैं दुःख युक्त हूँ"—ऐसे वचनों को कहती हुई मानलीला निकुञ्ज के एक कोने में बिराजती हुई श्रीलाडिलीजू अत्यन्त प्रवीणा अपनी प्यारी सखी श्रीचन्द्रकलाजू से "प्राणाः यदर्थं" यह आगे कहे जाने वाले श्लोकका विषय कह रहीं हैं।

भाष्यम्—वर्तमानप्रयोगः कवेस्तच्चरितस्फुर्तेः कीदृशीं कलाश्रितामतिप्रवीणाम्। अयंभावः पितृगृहं गत्वा तत्राहं किं

करिष्यामि स्वयं तत्र प्रयान्ती स्वोत्कर्षं कथं लप्स्ये तं प्राणनाथं विनाकथं जीविष्यामीत्यतश्चन्द्रकलया तस्य दुर्नयमपनीय विस्मृतं स्नेहपथं ग्राहयित्वा पुनस्तं मिलिष्यामीति।

इति श्रीबलदेवसूरिविरचिते श्रीजानकीगीतभाष्ये श्रीजानकी-मानविधानं नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥

अर्थ—प्राह यह वर्तमान कालका प्रयोग कविके हृदयमें चरित प्रकट होने से किया गया है। श्रीलाड़िलीजू विचारती हैं कि श्रीपिताजी के गृह श्रीमिथिलाजी जाकर मैं क्या करूंगी स्वयं जानेसे अपना उत्कर्ष कैसे पाऊंगी तथा प्राणनाथ के बिना कैसे जीऊंगी इसलिये श्री चन्द्रकलाजी के द्वारा उनके अनय को हटाकर विस्मृत स्नेह पथ को पुनः स्मरण द्वारा ग्रहण कराने के पश्चात् मैं उनसे मिलूंगी। भाव यह है कि श्रीप्रियतमजू का अनुराग श्रीप्रियाजू में अनुपम है अतः न तो श्रीप्राणवल्लभजू का तिरस्कार ही किये हैं और न अन्य नायिकाओं के साथ विलास रूप अनीति ही किये हैं, और न स्नेह पथ को भूले हैं-किन्तु पूर्ववत् श्रीप्रियाप्रेम परतन्त्र हैं श्रीलाडिलीजू स्वाधीन भर्तृका हैं अतः किञ्चित् भ्रम होनेपर भी शीघ्र मानकर जाती है। क्योंकि श्रेष्ठ नायिकाओं का यह भूषण है और परिकरों के भोग्य हैं क्योंकि सखियां कभी कभी इस रस के आस्वादन केलिए ऐसी रचनायें रचती हैं जिसमें श्रीप्यारीजू मान करें और प्रियतम जू हा हा खायं श्रीप्रियाजू की प्रार्थना करें उस

रसको देखकर हम सखियों को बड़ा ही सुख होगा इत्यादि विषयों को इससमान प्रसङ्गमें समझना चाहिये अतः श्रीलाड़िली-जू प्रणयकोप के आवेश में सभी बातें विपरीत समझकर श्री चन्द्रकलाजू से कहरही हैं कि आप प्यारेको स्नेहपथ का स्मरण दिलावें तब मैं मिलूंगो) इत्यादि ।

इति श्रीसद्गुरुसदनीय पं० श्रीसीतारामशरण कृत "रसबोधिनी" भाषाटीकायां प्रथमः सर्गः ॥१॥

❁ अथ द्वितीयः सर्गः ❁

प्राणाः यदर्थं विधृताःप्रिया इमे,
सचेद्भवेदन्यरतोरघूत्तमः ॥
तदाकिमेतेन फलं गृहादिना,
किं यौवनेनापि चजीवितेनकिम् ॥ १
द्रक्ष्यामि नाथंमुनिगीतगाथं,
यदा मदाघूर्णितलोचनंतम् ॥
तदाघटीः सिक्तपटीरनीरारत्नैः,
करिष्ये खचिताः वयस्ये ॥ २
सम्प्रत्ययं यदपिमेनकरोत्यपेक्षां,
कामानुरंजितमतिः शतपत्रनेत्रः ॥
इन्दीवरावलिमनोज्ञतनोस्तथापि,
खिन्नाहमस्य न गुणान् सखि विस्मरामि। ३

अर्थ—हे श्रीचन्द्रकले ! जिन श्रीप्रियतम के लिये मैंने अपने प्राणों का आदरपूर्वक पालन किया है वे श्रीराजेन्द्रनन्दन-जू यदि अन्य नायिकाओं के साथ विहार करते हैं तो इस उत्तम गृह, बाटिका आदि से क्या लाभ तथा मेरी इस तरुणाई तथा इस जीवन से ही क्या लाभ होगा ॥१॥

हे प्यारी श्रीचन्द्रकले ! यदि मद से भरे हुये रसपूर्णनेत्र वाले, जिनकी गाथा को मुनिलोग सदा गान किया करते हैं-- ऐसे श्रीप्राणवल्लभजू को जब मैं देखूंगी तब हे सखि ! तो वह समय मुझे कितना प्यारा लगेगा। उस समयको चन्दन मिश्रित सुशीतल जल से अभिषिक्त करके रत्नों से जटित कर दूंगी ॥२॥

हे सखि ! यद्यपि श्रीराजीवलोचनजू इस समय क्रीड़ासक्त होने के कारण मेरी अपेक्षा (स्मरण) नहीं करतेहैं तथापि नीलकमल के सदृश सौरस्य-सौगन्ध्य-सौकुमार्य आदि मनोहर गुणों से युक्त श्रीविग्रह वाले श्रीगुणसागर नागरजू के गुणों को मैं नहीं भूल सकती हूँ क्योंकि उनके गुणों में मैं आसक्त हूँ ॥ ३

भाष्यम्—चन्द्रकलां प्रति यदुक्तं तदाह प्राणा इति हे स्वामिनि त्वदेकचित्तोऽप्यसौ स्मरकलासिन्धुर्मध्यामतिह सुकुमारीं त्वां निजौद्धत्याऽक्षमां मत्वा अन्याभिः प्रगल्भाभिस्ततं कुर्वन्नूरमतां गृहेश्वरी तु त्वमेवतेन का क्षतिरित्याशंक्याह प्राणा इति—हे सखि चन्द्रकले ! यदर्थमिमेप्राणाः विधृताः रामानुरक्तया मयाऽत्यादरेण पालिताः स रघूत्तमः श्रीरामश्चेदन्यरतोऽन्यासु युवतिष्वासक्तस्तदैतेनगृहादिना किं फलं प्रयोजनम्।

अर्थ—श्रीचन्द्रकलाजी के प्रति जो वचन कहे हैं वे कहते हैं "प्राणाः" इस श्लोक से श्रीचन्द्रकलाजी कहती हैं कि-हे श्री-

स्वामिनीजू ! श्रीप्रियतमजू तो आपमें तन्मय हैं किन्तु केलि-कलासागर नटनागरजू आपको मध्या और अति सुकुमारी समझकर अपनी उद्धत कला में अक्षम जान अन्य प्रगल्भा नायिकाओं के साथ उन कलाओं को करते हुए रमण करें, किन्तु गृहेश्वरी, महलविहारिणी तो आप ही हैं इससे क्या क्षति है, इत्यादि भावों को सुनकर श्रीप्रियतमनयनचकोरी श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजू कहती हैं—हे श्रीचन्द्रकले ! जिनके लिये इन प्राणों का मैंने अत्यन्त आदरपूर्वक पालन किया वह श्रीराज-नन्दनजू यदि अन्य नायिकाओं में आसक्त हों तब इन गृह आदि से क्या प्रयोजन।

बहुविचित्रमणिमयप्रासादैर्दिव्याम्बरभूषणादिभिः रसात्मकैरशनपानैश्चकिं कार्यमित्यर्थः। आस्तांगृहादिकं तं विना तु नाहं भविष्यामि त्वं चेत् प्रवीणासि तर्हि मे जीवनोपायं कुरू यथा मे लाघवं न स्यात्। स तु मदेकतानमनाः मामतिसत्कारपूर्वकं प्रसादयेदिति भावः। तस्याभीष्टं त्वया यद् व्यञ्जितं तदगत्यामया कथंचिदुररीकृतमित्यनुध्वनिः।

तथा नाना रंग के चित्र विचित्र मणिमय अट्टालिकाओं से दिव्य वस्त्र भूषणादि एवं रसमय भोजन पान आदि से क्या लाभ ? अर्थात् श्रीप्राणवल्लभजू के बिना ये सभी पदार्थ मेरे लिये सुखद नहीं है। गृहादि कों की क्या गणना है

उनके बिना मैं जीवित भी नहीं रह सकती हूँ। यदि आप अत्यन्त प्रवीणा हैं तो मेरे जीवन का उपाय करें, जिसमें मेरी लघुता नहीं हो, आप ऐसा प्रयत्न करें जिसमें श्रीप्राण-संजीवनजू मुझ में अनन्यभाव से युक्त होकर अतिसत्कार पूर्वक मुझको प्रसन्न करें, प्यारे का अभीष्ट जो कुछ आपने कहा वह मैंने लाचार होकर किसी प्रकार से स्वीकार किया है-यह अनुध्वनि है।

अथत्वभीष्टसाधिकायै मह्यं किं पारितोषिकं दास्यसीति तदुक्तिं सम्भाव्य प्रियानुरागतरंगविलोलिताहं द्रक्ष्यामीतिः-यदाहं नाथंद्रक्ष्यामि तदा तस्मिन् दिवसे घटीः सिक्तपटीर-नीरा रत्नैः खचिताश्च करिष्ये यासु घटीषु श्रीरामस्य दर्शनं भवेत्ताश्चंदनादिभिः-अभिषिच्य रत्नैर्जटिता करिष्यामीति। निरवयवस्य व्यापकस्य समयस्य तादृशसत्कारेच्छोक्त्या संतोषस्य हृद्यसमावेशो ध्वनितः।

श्रीप्यारीजू की ऐसी रसमयी वाणी सुनकर श्रीचन्द्रलाजू कहती हैं कि, यदि मैं आपका मनोरथ पूर्ण करदूंगी ? तब मुझे आप पुरस्कार (इनाम) क्या देंगी ? तब श्रीलाडिलीजू कहती हैं; हे श्रीचन्द्रकले ! श्रीप्राणवल्लभजू को जब मैं देखूँगी तब श्रीप्रियतम के अनुरागतरङ्गोंसे ओतप्रोत होकर उसदिन उससमयको सुगन्ध चन्दन मिश्रित सुशीतल जल से सिंचित करके रत्नों से जटित

करूँगी- अर्थात्- जिस घड़ीमें श्रीप्राणवल्लभजू का दर्शन होगा उसघड़ी को चन्दन मिश्रित जलसे अभिषिक्त करूँगी। व्यापक तथा निरवयव समय का इस प्रकार सत्कार करना इससे आनन्द का हृदय में असमावेश (अर्थात् हृदय से बाहर आनन्द का उमड़ पड़ना) सूचित होता है।

कीदृशं नाथं मुनिभिः वशिष्ठवामदेवादिभिर्गीता गाथा सौन्दर्य्य-सौजन्य-सत्कुलता-दानित्व-शरण्यत्व-विक्रमादि-सूचकं चरितं यस्य तं मदेनोदभ्रतारुण्यकृतेनाघूर्णिते लोचने यस्य तमिति पदाभ्यां गुणरूपासक्तिर्ध्वनिता। मदभीष्टसाधिकायास्तेयोग्यं त्वद्देयं नान्यंपश्यामि किन्तु आत्मानमेव त्वदधीनं करोमि त्वंतु-एनं तस्मै स्वीयं कृत्वा देहीति व्यज्यते

किस रूप में प्यारे को देखने की इच्छा है? सो ग्रन्थकार कहते है कि—वशिष्ठ, वामदेव आदि मुनियों ने जिनकी गाथा का गान किया है—अर्थात् सौन्दर्य्य, सौजन्य, सत्कुलीनता, दानित्व, (दानवीरता) शरण्यत्व, (शरणागत पालन) विक्रम आदि सूचक चरितों का गान किया है। तथा नव तारुण्य के मद से जिनके दोनों नेत्र रस भरे (मदभरे) हैं-

"अमिय, हलाहल, मद, भरे, श्वेत, श्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि, परत जेहि चितवत एक बार॥"

उनको जब देखूंगी (इन दोनों पदों से श्रीप्यारीजू की श्रीप्रियतमजू के गुणों तथा रूपोंमें अत्यन्त आसक्ति ध्वनित है) हे श्री चन्द्रकले! मेरे इस महान् मनोरथ को पूर्ण करने वाली महासुखप्रदायिनी आपको देने योग्य पुरस्कार (इनाम) मैं अपने पास नहीं देखती हूँ। अतः अपनी आत्मा को ही मैं आपको दूंगी अर्थात् आपके आधीन करदूगीं। आप इस (आत्मा) को अपना पुरस्कार समझ कर श्रीप्रियतमजू को दे दीजिये। यह ध्वनि है।

प्रबोध्य
हे स्वामिनि मया बहुकृत्वः प्रबोधमानोप्यसौ यदि त्वदेकानुवृत्तिं न कूर्यात्तदा किं विधेयमिति तदुक्तिमाशंक्याह सम्प्रतीति:- अयं शतपत्रनेत्रः पंकजाक्षो रामः सम्प्रत्यधुना यदि मे ममापेक्षां स्पृहां न करोति तत्र हेतुः कामेति कामेन तत् क्रीडयानुरंजितामतिर्यस्य सः तथाप्यस्य गुणान् मदेकतानमनस्त्वादीनहं न विस्मरामि, कीदृशस्य इन्दीवरेति-नीलकमलकमनीयमूर्तेरित्यर्थः खिन्नाहमासक्तिभरात्, इह रूपासक्तिर्व्यज्यते।

श्रीचन्द्रकलाजी कहती हैं कि—हे श्रीस्वामिनीजू मैं श्री प्राणवल्लभजू को बहुत प्रयत्नों से समझाऊँगी किन्तु बहुत मनाने से भी यदि वह नहीं मानेंगे-अर्थात आपमें अनन्य भावसे प्रीति नहीं स्वीकार करेंगे तब मैं क्या करूँगी ? इस आशय को लेकर सम्प्रतिः यह श्लोक ग्रन्थकार कहते हैं:—

श्रीराजीवलोचन श्रीप्राणसंजीवनजू क्रीड़ासक्त होने के कारण मेरी अपेक्षा इस समय नहीं करते हैं, तथापि नीलकमल के सदृश सौकुमार्य, सुगन्ध युक्त विग्रह वाले, श्रीलावण्यसुधासिंधुजू मुझमें अनन्य भावसे प्रेम करते हैं, तथा सदा परतन्त्र रहते हुये मेरी रुचिका पालन करते रहते हैं । उनके ऐसे गुण समूहों को मैं नहीं भूल सकती हूँ, क्योंकि इन गुणगणों में मैं आसक्त हूं यहां नीलकमलकमनीयमूर्ति से रूपासक्ति सूचित होती है।

अयमिति गाढासक्त्या प्रत्यक्षमिवाभासमानं तं प्रत्युपालम्भमिवसमर्प्योच्यते । सम्प्रतीत्यत्रेदं व्यज्यते न केवल मावयोर्दाम्पत्यव्यवहारो लौकिकः अपि सहस्रकृत्वोऽनुभूतो मिथस्तत्सुखस्पृहामयः परम मैत्रीस्पृहामयो, लोकातीत इति ततश्च केनचिदन्तरायेण मामधुना विस्मृतवानप्यसावन्ततो न विस्मरिष्यतीत्यहं वेद्मि त्वन्तुत्यक्ता शंका त्वरितं प्रयतस्व गौरवेण यथा मां प्रसादयेदिति ॥ ३ ॥

अयम्—इस शब्द का प्रयोग यह बतलाता है कि गाढ आसक्ति होने के कारण श्रीप्रियाजू को श्रीप्रीतम दूर रह करभी प्रत्यक्ष के सदृश प्रतीत हो रहे हैं,-अत: मानो उपालम्भ देती हुई सी कह रही हैं । सम्प्रति—इस शब्दका यह भाव है-कि हम दोनोंका दाम्पत्य व्यवहार केवल लौकिक नहीं है-किन्तु

दिव्य एवं अनादि कालीन है ! अतः हम दोनों की परस्पर परम मित्रता है तथा दोनों का सुख लोकातीत है । किसी कारण वश इस समय श्रीप्राणवल्लभजू मुझको भूल गये हैं किन्तु विघ्न दूर होने पर अन्त में नहीं भूलेंगे इस बात को मैं जानती हूं सभी शङ्काओं को छोड़कर आप शीघ्रही ऐसा प्रयत्न करें जिसमें अत्यन्त गौरव के साथ श्रीप्रियतमजू मुझको प्रसन्न करें (अर्थात् मनावें) ।

❀ अलहैया रागे त्रिताली ताले ❀

निर्मलमलयजचर्चितमम्बुदकान्तवपुषमनुदारम्
जितचपलावलिगौरवसनमतिकुञ्चितकुंतलभारम् १
रामरशिकमनुवादितवंशम् ।
भजति मनोमम चलदवतंसम् । ध्रुव॥
कनकमकरमयकुण्डलमण्डित-
गण्डयुगलमृदुहासम् ॥
मंजुलमणिगणकिरणविनिर्मित-
यौवतहृदयविकासम् ॥ २॥
चन्द्रमुखीनिकुरम्बविजृम्भित-
सुस्मितवीक्षणलोलम् ॥

कंकणकिंकिणसिंजितरंजित-
चुम्बितयुवतिकपोलम् ॥ ३ ॥
रघुकुलभूषणरूपनिरूपण-
मनुरचितं हरिणेदम् ॥
गायत रुचिरपदावलिभावद-
मपर्यापितभवखेदम् ।४।

भावार्थ— (श्री राजकिशोरीजू श्रीप्रियतमप्राणवल्लभजू के गुण-रूपों में आसक्त होकर श्रीप्रियतमजू की छबि का वर्णन करती हैं) हे श्रीचन्द्रकले ! मेरा मन रसिकशिरोमणि श्रीप्रियतमजू का भजन करता है (निरन्तर चिन्तन करता है। जिन्होंने वंशी को बजाया है (अर्थात् वंशी बजाने वाले प्रियतमप्राणवल्लभजू में मेरा मन आसक्त है, जिनके कुण्डल डोलते हैं तथा मुकुट में लगे हुये गुच्छे (झब्बे) डोलते हैं। स्वच्छ चन्दनादि से लिप्त जिन प्रियतम का उदार शरीर सुशोभित है। विद्युतसमूह की छबि को जीतने वाले, पीताम्बर धारण किये हैं, तथा अति सघन चिक्कन, कुटिल अलकावली मुखारविन्द पर बिथुरी हैं। स्वर्ण के मकराकृत कुण्डलों से युगल कपोल सुशोभित हैं, मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं। कमनीय मणियों के केयूर हार नूपुर आदि की किरणें चमक रही हैं-जिसके दर्शन से नायिकाओं का हृदय कमल प्रफुल्लित हो रहे हैं।

जो स्वयं भी चन्द्रमुखी वृन्द के मन्द हास तथा कुटिल कटाक्षों से अत्यन्त चञ्चल हो रहे हैं, नायिकाओं के भूषण-कङ्कण, किङ्किणी आदि के मधुर शब्दों में अनुरक्त होकर जिन्होंने युवतियों के कपोलों का चुम्बन किया है। ग्रन्थकार कहते हैं कि-श्रीचक्रवर्तीन्द्रनन्दन, मनोजमदमर्दन, श्रीरघुनन्दनजू के अनुपम रूप का (श्रीप्रियाजू कृत) निरूपण को मैंने प्रबन्ध में किया, भवखेद को दूर करने वाली, अत्यन्त कमनीय पदावली का आप रसिक भक्तगण गान करें।

भाष्यम्—एवं कान्तगुणस्मरणविगलितमानसमुत्कण्ठिता सती तं वर्णयतिनिर्मलेतिः—मम मनःकर्तृ रामरसिकं भजति। कीदृशं-अनुवादितवंशम्—अनुवादितो वंशो येन तं चलन्तोऽवतंसा कर्णभूषणशिरोभूषणानि यस्य तमिति वंशवादनावेश उक्तः।

अब श्री प्रियतम जू के गुणों का स्मरण करने से मान रहित तथा उत्कण्ठा युक्त होकर प्रियतम को वर्णन करती हैं—निर्मल इस पद से-मेरा मन रसिक शिरोमणि श्री प्यारे जू का भजन करता है। कैसे प्रियतम हैं- वंशी बजाने में चतुर हैं 'तथा शिर के भूषण मुकुट में लगे हुये गुच्छे एवं कर्ण भूषण कुण्डल मधुर मधुर डोलते हैं। इससे वंशी बजाने में आवेश सूचित किया।

पुनः कीदृशं निर्मलेन-मलयजेन चर्चितं चन्दनकृतभक्तिच्छेदं, अम्बुदकान्तवपुषं घनकमनीयदेहं, अनुदारं, अनुगता दारा यं न उदारो यस्मादिति वा तं "उदारो दातृ महतोरित्यनुशासनात्" प्रेमरसप्रदं राजकुमारत्वान्महान्तमिति वा जितेति-जितास्थितया तुच्छीकृता चपलावलिर्विद्यु द्दुपटा येन तथाभूतं वसनं यस्य तं अतिकुञ्चितः प्रशस्तकौटिल्यभाक् कुन्तलभारः केशपाशो यस्य तं "अति शब्दः प्रशंसायामितिविश्वः"

(भाव यह है कि जिससमय रात्रिमें चन्द्रज्योत्स्ना छिटकती है उस समय आप सभी सखियों को मधुर वंशी का शब्द सुनाकर रास प्राङ्गण में बरबस आकृष्ट करलेते हैं ❀ और आपभी वंशीवजाते समय आवेश युक्तहो जाते हैं । यह भाव तथा टिप्पणी का पद ७२ पेज के अन्तका है)

पुनः कैसे हैं—निर्मल, मलयज चन्दन से जिनका सर्वाङ्ग लिप्त है, नील नीरज (कमल) के सदृश कमनीय विग्रह वाले स्त्री समूह जिनके अनुगत हैं अथवा जिनके समान कोई भी

❀मोहनी रामरसिक की बीन ।
बाजी री सखी रासमण्डल में सुनिके भई हौं अधीन ।
अब छिन पल कल परत न सजनी होत विरह तन छीन ।
श्रीरसिकअली तजि लाज मिलो अब नेह भयो उरपीन ।

उदार नहीं है, "उदारो दातृमहतोः" इस अनुशासन से उदार का अर्थ दाता तथा महान् होता है, अतः प्रेमरस के वितीर्ण करने से उदार हैं तथा राजकुमार होने से महान् हैं। अपनी शोभासे दामिनीवृन्द को तिरस्कार करने वाला पीताम्बर धारणकिये हैं अत्यन्तप्रशंसनीय कुटिल अलकावलियां मुखमण्डल पर झूम रही हैं, यहां अति शब्द प्रशंसा अर्थ में है।

कनकेति—कनकनिर्मिताभ्यां मकरमयाभ्यां मकराकार-कुण्डलाभ्यां मण्डितयोर्गण्डयोः कपोलयोर्युगले मृदुहासो यस्यतम् । मंजुलस्य कमनीयस्य मणिगणस्य हारनूपुर-केयूरादिगतस्य मुक्ताहीरकमाणिक्यप्रभृतेः किरणैः कान्ति-भिर्विनिर्मितः कृतो यौवतस्य युवतिचयस्य हृदयविकाशः चित्तो-ल्लासो येन तम् । अयं भावः तस्य कुण्डलान्दोलनमृदुहास-विजृम्भितामतिचारुतां वीक्ष्य मकरन्दे भृङ्ग्य इव चपलास्त-रुण्यः तस्मिन्नवशाः निपतन्ति अतस्तस्य मदेकतानमनसो न कोऽपि दोषलेश इति ।

अर्थ—कनक निर्मित मकराकृत कुण्डलों से तथा मन्द-मृदुहास से जिनके कपोल सुशोभित हैं, अति कमनीय मणिगण अर्थात् हार, नूपुर, केयूर आदि विभूषणों में जड़ी हुई मोती, हीरे, मणि आदि की किरणों से युबति समूहों के हृदय का

विकास करते हैं—भाव यह है कि श्रीप्रियतमजू के कुण्डलों का हिलना तथा मृदुहास से विकसित कपोलों की अति सुषमा को देखकर नायिकायें उसीप्रकार परवश होकर श्रीप्रियतमजू के ऊपर गिरती हैं जैसे नूतन बिकसित कमल का मकरन्द के प्रति भ्रमरियाँ गिरती हैं। अतः हे श्रीचन्द्रकले! श्रीप्राणसञ्जीवनजू तो मुझमें ही अनन्यभावसे अनुरक्त हैं उनमें दोष का लेश भी नहीं है। उनके स्वाभाविक सौन्दर्य माधुर्य में आसक्त होकर नायिकायें उनके श्रीअङ्गों पर गिरती हैं अतः यह तो उनके सौन्दर्य-माधुर्य का ही दोष है प्रियतम तो निर्दोष हैं।

चन्द्रमुखीनिकुरम्बस्य सुन्दरीवृन्दस्य विजृम्भितं समुदितं यत् स्मितं मन्दहासस्तेन विमिश्रितं यत् वीक्षणं कुटिलकटाक्षस्तेन लोलं चपलं तं सतृष्णं वा 'लोलश्चपलसतृष्णयोरित्यमरः'' कंकणानि च किंकिण्यश्च तासां सिञ्जितैः शब्दैः रञ्जितो रक्तीकृतमनश्चासौ चुम्बितो युवतिकपोलो येन स चेति तम्। ''विशेषणयोः कर्मधारयः'' सौन्दर्यलोभेनैव बलादेव तास्तस्य गले निपतन्ति, अतस्तासां सत्कृतिं कथंचिदसौ विदधाति नतु तास्वनुरागलेशः अन्यथा पौरुषकुत्सनप्रसङ्गः। अथवा तत्र तत्र मदीयत्वभ्रान्त्या तस्य तथा भाव इति व्याख्येयम्, तस्मादसौ मदेकतानमनास्त्वया ज्ञेय इत्याशयः।

चन्द्रमा के सदृश मुख वाली सुन्दरी समूह का मन्दहास

मिश्रित कुटिल कटाक्ष से आप (श्रीप्रियतमजू) अत्यन्त चञ्चल हो रहे हैं अथवा तृष्णा से युक्त हो रहे हैं नायिकाओं के कङ्कण तथा किङ्किणियों के रसवर्धक मधुर शब्दों को सुनकर आपका मन अनुरक्त हो जाता है, अतः रस परवश युवतियों के कपोलों का चुम्बन करते हैं। श्रीरूपसुधासागर गुणसागर श्रीप्रियतमजू का अनुपम सौन्दर्य देखकर परवश नायिकायें आपके अङ्गों पर गिरती हैं अर्थात् संश्लेष करती हैं अतः उन तरुणियों का आप किसीप्रकार सत्कार करते हैं, किन्तु उन सबमें आपका अनुराग नहीं है। यदि आप उन सब का सत्कार नहीं करें तो दक्षिण नायकत्व आदि गुणों में दोष आ जायगा। अथवा उन सभी नायिकाओं में मेरी भ्रान्ति से आप क्रीड़ा करते हैं यह भाव है। अतः हे श्रीचन्द्रभानुनन्दनि, प्रियतममुखचकोरचन्द्रिनि, श्रीचन्द्रकले ! आप श्रीराजीवलोचनजू को पूर्णरूपेण मुझमें ही आसक्त जानें।

भाष्यम्—कविराह हरिरिति रघुकुलभूषणस्य रघुवंशावतंसस्य रूपनिरूपणं श्रीजानकीकृत सौन्दर्यवर्णनं हरिणा अनु अनन्तरं रचितम्, इदंगायत यूयं हि भक्ताः कीदृशं-रुचिरा कमनीया पदावलिर्यत्र तत् भावदं रामविषयकप्रेमदम् अपयापितोऽवगामितो दूरीकृतो भवखेदः संसाराध्वभ्रमण-परिश्रमो येन तत्।

ग्रन्थकार कहते हैं कि रघुकुलके भूषणस्वरूप श्रीरघुनन्दन-

जूका अनुपम सौन्दर्यका निरूपण श्रीप्रियाजू ने किया है, तत्पश्चात् मैंने इस पदावली की रचनाकी आप सब भावुकगण इसका गान करें। यह पदावली रोचक, नितान्त कमनीय तथा प्रिय-विषयक प्रेमको प्रदान करने वाली है। पुनः जिसका गान के प्रभाव से संसार भ्रमणरूप परिश्रम छूट जाता है अर्थात् इस रसमय पदका गान मात्रसे ही भवखेद की निवृत्ति हो जाती है (यहां ग्रंथकार का आशीर्वाद जानना चाहिये।)

ताराधिपश्चन्दन शैलवातः-
प्रासादराजवरनिष्कुटाश्च।
मोदं ववषुः प्रियसंगमेन-
हालाहलं तद्विरहे किरन्ति ॥१

अर्थ—हे श्रीचन्द्रकले! चन्द्रमा मलयबायु, मणिजटित सुन्दर अट्टालिकायें तथा गृहवाटिकायें ये सभी पदार्थ श्रीप्राण-वल्लभजू के सङ्ग से आनन्दकी वर्षा करते थे आज प्यारे के विरह में वे ही हलाहल विष की वर्षा कर रहे हैं।

भाष्यम्—रामवियुक्तायाः मम सुखदा अपि पदार्थाः दुःखदा अभवन् किमिति त्वं विलम्बसे, इत्याह तारेति ताराधिपश्चन्द्रमाः चन्दनशैलवातो मलयानिलः प्रासादराजिः राजमन्दिरश्रेणी वरनिष्कुटा अतिकमनीया प्रासादमध्यवर्तिन्यो

वाटिकाः "गृहारामास्तुनिष्कुटा इत्यमरः" एते प्रियसङ्गमेन मोदमानन्दं ववर्षुः इदानीं तद्विरहे प्रियविच्छेदे हालाहलमप्रतिकारं विषविशेषं किरन्ति वमन्ति त एवेत्यर्थात् स प्रियानेवानन्दरूपः तत्कान्तिसंक्रमादन्येषामानन्दहेतुता न तु स्वतः तस्मात्वं त्वरया दर्शयेति ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीप्राणवल्लभ से वियुक्त होने से मुझे सभी सुखदायक पदार्थ भी दुखदायक हो गये अतः हे श्रीचन्द्रकले ! आप क्यों विलम्ब कर रहीं हैं।

चन्द्रमा, मलयवायु, राजमहल की श्रेणी, अत्यन्त कमनीय राजमन्दिर के मध्यवर्ती वाटिका ये सभी भोगसामग्रियां श्रीप्राणवल्लभ के साथ रहनेपर परमानन्द की वर्षाकर मुझको परमसुख प्रदान करती थीं इस समय श्रीप्यारे के वियोग में वे ही हालाहल विष वमन कर रही हैं अतः श्रीप्रियतम ही आनन्दरूप थे उनकी छवि का संचार से हीं सभी भोगसामग्रियों में आनन्द की प्रतीति होती थी स्वतः सभी पदार्थ सुखदायक नहीं हैं। अतः आप शीघ्र श्रीप्राणवल्लभ का दर्शन कराइए।

(आसावरीरागे त्रितीला ताले)

सुन्दरि विन्दति वरतनुरेषा, कुसुमविभूषितविरचितवेषा ॥१॥ कापि रमते रघुपतिना,

चारुतरस्मितहृतमतिना ॥ध्रुव॥ दयितविलोकन-समुदितलज्जा, तदपि विशङ्कमदनरणसज्जा।।२। अनुपदसञ्चलकुण्डलहारा, विगलितवसनशिथिलकचभारा ॥३॥ श्रीहरिनिगदितरामविनोदम्, कुरुत बुधा हृदि विशमिततोदम् ॥४॥

अर्थ—हे सुन्दरि श्रीचन्द्रकले ! कोई एक श्रेष्ठनायिका परमसुन्दरी पुष्पों के शृङ्गार से अपने सर्वाङ्ग को विभूषित कर श्रीरघुबंशविभूषणजू के साथ क्रीड़ाकर रही है, प्यारे ने अपने सुन्दर मन्दहास से उस नायिका का मन को हरलिया है। यद्यपि श्रीप्राणवल्लभको देखकर उसे लज्जा आती है तदपि रस परवश हुई विशङ्क मनसे मदनरण में सुसज्जित होकर तत्पर है उस नायिका का कुण्डल तथा हार निरन्तर डोल रहे हैं बसन विगलित है तथा केशपाश (वेणी) का बन्धन खुल गया है। श्रीहर्य्याचार्यजी महाराज का निर्मित यह श्रीप्रियतमजू का चिन्मय बिलास, हे भक्तगण ! आप सब हृदय में धारण करें इससे समस्त व्यथायें शमन हो जायगीं।

भा०-एवं श्रीरामगुणगणस्मरणोल्लसितानुरागभरेणतत्क्रीडनप्रतीतानया न समाधायाप्यथ रामप्रेषितस्य कस्यापि दूतीजनस्यागमनाभावात्तामिरसौ विहरन्नस्तीति पुनः संभावयन्ती स्व पूर्व-

चेष्टामेव तत्रारोपयन्तीति प्राह सुन्दरीति-सुन्दरि हे शशिकले। एषा कापि वरतनुः तरुणी विन्दति राममिति शेषः कीदृशी सतीत्याह कुसुमेति अतिप्रवीणातद्योग्यैवेति, विन्दति चेत् किं भवेत्तत्राह रघुपतिना सह रमते, कीदृशेनेत्याह चार्विति चारुतरेणातिकमनीयेन स्मितेन मन्दहासेन हृतामतिः तस्याः धीर्येन तेनेत्यर्थः रामोऽपितस्याः मनः सुस्मितेन जहारेति मिथ आसक्तिर्ध्वनिता तेह सह क्रीडतीति तस्याः प्राधान्यं वोध्यते "सहयुक्तेऽप्रधाने,, इति स्मरणात्-इत्थं च तस्याः स्वातन्त्र्यं व्यञ्जनाद्ग्राम्यत्वंतस्यापि तथात्वं व्यञ्जितम् ॥१॥

अर्थ—अब श्रीप्रियतम के गुण गणों का स्मरण करनेसे हृदय में उल्लास होने के कारण श्रीप्यारीजू अनुराग में भरके प्यारे की क्रीड़ा का अनुभव करती हुई श्रीराजनन्दन की भेजी हुई कोई दूती का आगमन न देखकर आप यह बिचारती हैं कि प्यारे उन्हीं नायिकाओं के साथ बिहार कर रहे हैं ऐसी भावना करती हुई अपनी पूर्वचेष्टा का उन नायिकाओं पर आरोपणकर कहती हैं कि हे सुन्दरि श्रीचन्द्रकले ! यह कोई एक परम सुन्दरी नायिका श्रीप्राणवल्लभजू को स्ववश में करके क्रीड़ा कर रही है पुष्पों के शृङ्गारसे उसका सर्वाङ्ग विभूषित है तथा अति प्रवीण है अर्थात् श्रीप्रियतमजू के योग्य ही है, अतः श्रीरघुनन्दनजू के साथ रमण कर रही है। श्रीप्राणवल्लभजू ने अपना कमनीय

मन्दहास से उस नायिका का मन हरण कर लिया है। (इससे परस्पर दोनों की आसक्ति ध्वनित है।) श्रीप्रियतम के साथ रमण कर रही है इससे नायिका की प्रधानता सूचित होती है, क्योंकि "सहयुक्तेऽप्रधाने" इस पाणिनिसूत्र से अप्रधान में तृतीयाविभक्ति होती है। यथा—'पुत्रेण सहागतः पिता'।

भाष्यम्—इत्थं स्मराक्रान्ता सा दयितस्य तद्वैवश्यसमुदितकौतुकस्य रामस्य यद्विलोकं तां प्रतिवीक्षणं तेन समुदिता जाता लज्जा यस्याः सा। यद्यप्येवं तथापि विशंको यो मदनरणः प्रियकृतगाढश्लेषाधरखण्डनादिरूपं कामयुद्धं तत्र सज्जा प्रतियोद्धृतया स्थितेत्यर्थः। एवञ्च नायककृतः शृङ्गारोनिर्दिष्टः ॥२॥ अथ नायिकाकृतं तमाह अन्विति अनुपदं निरन्तरं सञ्चलाः सम्यक् चलन्तःकुण्डलहाराः कर्णभूषणमुक्तास्रजो यस्याः सेति-अतिप्रागल्भ्यंव्यञ्जितम्॥३॥ अथ रतिश्रममाह-विगलितेति विगलितं दूरोत्सारितं वसनं यस्याः साच शिथिलोमुक्तबन्धनः कचभारोऽतिबहुलदीर्घकेशपाशो यस्याः साचेति ॥३॥ कविराह श्रीरितिस्फुटम् विशमितस्तोदस्त दितरप्रसङ्गजा व्यथा येन तमिति ॥४॥

इस प्रकार स्मरक्रान्ता उस तरुणी के प्रति स्ववशीभूत प्रियतमका जो अवलोकन है अर्थात् रसभरी दृष्टिसे जब प्यारे

जू उस नायिका की ओर देखते हैं तब वह लज्जा से सङ्कुचित हो जाती है। यद्यपि ऐसी स्थिति है तथापि मदनरण में बिशङ्क है—अर्थात् प्रियतमजू से किया हुआ गाढ़ आलिङ्गन-अधर खण्डनादि रूप जो कामयुद्ध है उसमें प्रतिद्वन्दी होकर स्थित है। यहां नायक की ओर से किया हुआ शृङ्गार दर्शित किया गया ॥ २ ॥ अब नायिका की ओर से वर्णन करते हैं-नायिका के कर्णभूषण तथा मोतियों के हार निरन्तर डोल रहे हैं। इससे अत्यन्त प्रगल्भता (निपुणता) सूचित किया। अब रतिश्रम कहते हैं-नायिका का वस्त्र बिगलित हो गया है तथा विशाल केशपाश (वेणी) का बन्धन ढीला पड़ गया है ॥ ३ ॥ ग्रन्थ-कार कहते हैं कि-हे भक्तगण ! श्रीरघुनन्दनजू का यह विलास आप सब हृदय में धारण करें। इसका चिन्तन श्रीप्रियतम से अन्य प्रसङ्ग से होने वाली व्यथाओं को दूर कर देगा ॥ ४ ॥

इत्थं विशङ्कितनिजार्चितपादरामा,
सा रूपयौवनहिताचरणाभिरामा।
कोपारुणांवक्रपरिस्फुरिताधरामा,
चिन्तामवाप विषमां रघुराजरामा ॥१॥

इति श्रीहर्य्याचार्य विरचिते श्रीजानकीगीते तदन्य-
विहारशंका वर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

अर्थ—जिन्होंने स्वयं श्रीप्रियतमजू के युगलचरणों का

अर्चन किया है तथा रूप यौवन आदि से अनुकूल आचरण द्वारा अत्यन्त कमनीया हैं-ऐसी सौशील्यगुणसागरा श्रीराम-रमणीजू विविध प्रकारकी शङ्काओं से युक्त होकर विषमचिन्ता को प्राप्त होगई। प्रणयकोप से आपके दोनों नेत्र लाल होगये तथा अधर कम्पायमान होगया तथापि शोभायुक्त हैं।

भाष्यम्—एवं पत्युरितरासक्तिं विभाव्याऽतिदुःखिता बभूवेत्याहेत्थमिति रघुराजरामा जानकी विषमां चिन्ताम-वाप कीदृशी विशंकिता-विविधशंकाविषयतां नीता निजा-र्चितपादोरामो यया सा निजेन आत्मनार्चितौ पादौ यस्य स चासौ रामश्चेति। रूपसौन्दर्य्ययौवनमभिनवतारुण्यं हिताचरणं च तत्तदाचरणेन तत्सुखोत्पादनेन तैरभिरामा कमनीया। कोपेनारुणे अम्बके नेत्रे यस्याः सा च परिस्फुरितं कम्पितोऽधरोयस्याः सा चेति-विशेषणयोःकर्मधारयः अयं भावः धर्माचरणेन मैत्र्या च वहिरङ्गान्तरङ्गद्विविधसेवाब्रता स्वयं च समाभ्यधिकविरहिता राजकुमारी स्वजीवनातिश्रेष्ठ-स्य पत्युरितराभिषङ्गप्रतीतौ दुःखयुक्तामिति ॥५॥

इति श्रीवलदेव सूरि बिरचिते श्रीजानकीगीतभाष्ये
द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अर्थ—इस प्रकार प्रियतम को अन्य नायिकाओं में

आसक्त जानकर श्रीप्रियाजू अत्यन्त दुखित हुईं-इस विषय को "इत्थं" इस श्लोक के द्वारा कहते हैं-श्रीरघुराजरामा श्रीलाड़िलीजू विषमचिन्तायुक्त होगईं। विविध शङ्काओं से युक्त हैं। जिन्होंने अपने शरीर से श्रीप्रियतम के युगलपादपद्मों का अर्चन किया है। तथा सौन्दर्य अभिनव. यौवन आदि गुणों के द्वारा अनुकूल आचरणों से श्रीप्रियतमको नित्य नूतन सुख प्रदान करती हैं-अतः अतिकमनीया हैं। प्रणयकोप से जिनके दोनों नेत्र लाल हैं अधरकम्पित है इतने पर भी मा-अर्थात् शोभा ही मानो मूर्तिमती होकर बैठी है भाव यह है कि धर्माचरण तथा मैत्री अर्थात् बहिरङ्ग अन्तरङ्ग दोनों प्रकारकी सेवाओंमें आप निरत रहती हैं। तथा अपने से समान व अधिक से रहित हैं अर्थात् आपके समान ही कोई नहीं है तब कोई नायिका अधिक कहां से होगी ऐसी परमसुन्दरी श्रीराजकुमारीजू अपने प्राणों से प्रियप्यारे को अन्य नायिकामें आसक्त जानकर दुःख युक्त हो गईं।

इति श्रीसद्गुरुसदनीय पं० श्रीसीतारामशरण कृत-
"रसबोधिनी" भाषाटीकायां द्वितीयः सर्गः ॥२॥

❀ अथ तृतीयः सर्गः ❀

अथ विधुवदनाः विहायसर्वाः,
परिपणितानुपमप्रियानुरागः ॥
क्वचिदपि निलये निलीय रामो,
वदति वचः कृपणं विचिन्त्यमानम् ॥१॥

अर्थ—श्रीप्रियाजू के अनुपम अनुराग की प्रशंसा करने वाले श्रीप्राणवल्लभजू श्रीप्रियाजू का मान जानकर सभी चन्द्र-वदनी नायिकाओं को छोड़ किसी कुञ्ज गृह में छिपकर दैन्य वचन बोलने लगे।

भाष्यम्—एवं सीतायाः विरहावस्थामुक्त्वाथ रामस्य तामाह अथेति रामो मानं विचिन्त्य कृपणं दीनं वचोवदति साक्षाल्लीला परिस्फुर्तेः लट् प्रयोगः। सीतागमनातिविल-म्बेन अप्रेक्षकारिणी सा निर्निमित्तं मानं दधारेति भावयित्वा तन्मात्रायत्तजीवनोऽहं तामन्तरा कथमहं भविष्यामीत्य-भाषतेत्यर्थः ॥

अर्थ—श्रीप्रियाजू की बिरहावस्था का वर्णनकर अब श्रीप्रियतमजू की बिरहावस्था का वर्णन करते हैं।

श्रीप्राणवल्लभजू श्रीप्रियाजू का मान को विचार कर दीन बचन बोलते हैं, "वदति, यह लट् का प्रयोग साक्षात् लीला की स्फूर्ति होने के कारण है।" श्रीप्रियाजू का आगमन में विलम्ब होनेसे श्रीप्रियतमजू यह बिचारकर रहे हैं कि श्रीप्रियाजू बिना बिचारे सहसा मान करने वाली हैं। अतः अकारण हीं मान कर गईं ऐसा बिचारकर आप कहते हैं कि मेरा जीवन तो उनके आधीन है अतः उनके बिना मैं किस प्रकार जीवित रहूँगा, इत्यादि दैन्य बचन बोलने लगे।

किं कृत्वा सर्वाः विधुवदनाः समाजगतास्तरुणीर्विहाय-त्यक्त्वा क्वचिदपि निलयेगृहे निलीय लीनो भूत्वेत्यर्थः, कीदृशः परिपणितः संस्तुतोऽनुपमः प्रियानुरागो येन सः अनुपमायाः प्रियायाः वानुरागः स्नेहनिर्भरः स्नेहमकरन्द-निभृतसीतापद्मिनीरसलुब्धोऽसौराममधुपो रूपमात्रोपा-धिकासु किंशुककुसुमसमासु परासु न रमेत अतस्तास्त्य-क्त्वा तदासक्तमनाः तत्तीव्रमानभंगाननुसंहितोपायः किं करिष्यातीति दैन्यं प्रापेति ॥ १ ॥

समाजगत सभी चन्द्रमुखी तरुणीबृन्द को छोड़कर किसी कुञ्ज में छिपकर श्रीप्रियतमजू दीन भाषण करने लगे। श्रीप्रिय-तम कैसे हैं? जिन्होंने अनुपम श्रीप्रियानुराग की प्रशंसा की है अर्थात् श्रीप्रियाजू का अनुराग अनुपम है ऐसा परिकरों के

मध्य में आप निरन्तर प्रशंसा करते हैं। अथवा श्रीप्रियाजू अनुपम हैं उनके स्नेह परवश आप हैं। भाव यह है कि स्नेह मकरन्दसे परिपूर्ण श्रीलाड़िलीजू कमल हैं प्रियतम रसलुब्ध भ्रमर हैं। भ्रमर मकरन्द रसपूर्ण कमल को छोड़कर किंशुक पुष्प के समान निर्गन्ध पुष्प पर नहीं वैठता, उसी प्रकार आप भी रूप मात्र उपाधि (धर्म) युक्त किंशुके सदृश अपर नायिकाओं में श्रीप्रियाजू के बिना नहीं रमण करते हैं अतः उन सभी को छोड़कर श्रीप्रियाजू में अत्यन्त आसक्त हो श्रीप्रियाजू का तीव्रमान भङ्ग होनेका उपाय न देख दैन्य अवस्था को प्राप्त हो गये। मैं क्या करूंगा इत्यादि विचारने लगे।

❀ टोढ़ी रागे त्योरा ताले ❀

जानकी मम वीक्ष्य खेलनमेषु कुञ्जगणेषु ॥
खिद्यते धुतकान्तिचिन्तितशंबरारिरणेषु ॥ १ ॥
गुरुतररूषा शशिमुखीकृता सा परुषेव ॥ ध्रुव ॥
हा मया पदकान्तिनिर्जितपंकजा विदयेन ॥
नार्चिता तदहुतिसंचितमंतुनातिभयेन ॥ २ ॥
यामि कामिह भामिनीं शरणं तदानयनाय ॥
सा यथा ममवल्लभा भविता विमतिशमनाय ॥ ३

हारिहरिकृतमेतदनुगतदाशरथिवचनेन ॥
पिबत भवभयनाशिभासितभावगतिरचनेन ॥४

अर्थ—ऐसे कुञ्ज समूहों में मेरी क्रीड़ा को देखकर श्रीमिथिलाधिपराजनन्दिनीजू खेदयुक्त हैं अतएव श्रीप्रियाजू की मुख कान्ति मलिन हो रही है। कैसे कुञ्ज समूह हैं जिन कुंजोंमें मदनयुद्ध आरम्भ है। वे श्रीचन्द्रवन्दनी श्रीप्रियतमाजू महान् प्रणय कोप से मेरे प्रति रुष्ट होगई हैं। इसमें मेरा ही दोष है मैं निर्दयी हूँ क्योंकि मैंने श्रीप्रियाजू का सत्कार नहीं किया। वे अपनी पदकान्ति से अरुण कमल को तिरस्कार करने वाली हैं ऐसी परमसुन्दरी को मैंने प्रथम नहीं बुलाया अतएव महान् अपराध एकत्र किया इसीसे भयभीत हूं। अब किसी भामिनी (सखी) की शरण में जाऊं-जो कि मेरी प्राणप्यारी जू का मान शमन कराने में समर्था हो। अर्थात् श्रीप्यारीजू का मान छुड़ाकर मुझसे मिलादे। हे भक्तों! श्रीहरिआचार्य कृत यह प्रियाप्रेमपरवश श्रीप्रियतम की उक्ति से युक्त मनोहर पदावली को पान करें अर्थात् सादर श्रवण करें। इसके श्रवण से भव भयकी निवृत्ति हो जायगी क्योंकि प्रियतम की उक्ति में प्रति स्थलमें भावकी रचनायें विशेष हैं।

भाष्यम्—दैन्यभाषणमाहजानकीति एषु कुञ्जगणेषु मम खेलनं वीक्ष्य जानकी खिद्यते, धुतकान्तीति खेदक्रि-

याया: विशेषणम्। कीदृशेषु चिन्तितः शंबरारेः समरस्य रणो-युद्धं येषु लताभिरात्मानमावार्य्य स्थितासौ युवतिभिस्ताभिः सह संजल्पन्तं मां दृष्ट्वातोगताविम्लानदेहा खेदं प्रापेत्यर्थः गुरुतररुषा महता क्रोधने सा शशिमुखी सीता परुषेव कृता मयि निःकरुणा सम्पादिता मां नाभिसरिष्यति मनस्विनी अतोऽहं कथं भविष्यामीति दैन्यनिर्भरः।

अर्थ—अब श्रीराजनन्दनजूका दैन्य भाषण का वर्णन करते हैं-श्रीराजकिशोरीजू इन कुञ्जसमूहों में मेरी क्रीड़ा को देखकर खेदयुक्त हो रही हैं, अतएव मुखमण्डल की शोभा संतापयुक्त होने से म्लान होगई है, अब कुञ्जोंकी उत्प्रेक्षा करते हैं-कैसा कुञ्ज है? जहां पर मैं नायिकाओं के साथ रमण कर रहा था-उसी का चिन्तन कर खिन्ना है। कुञ्ज की लताओं की ओट में छिपकर नायिकाओं के साथ हास विलास को देखकर खिन्न हो गई हैं अतएव मुखकान्ति म्लान होगई है। महान् प्रणय कोप से वे चन्द्रमुखी श्रीप्यारीजू मुझसे रुष्ट होगई हैं अर्थात् मेरे प्रति अकरुणा कर गई हैं अतएव मेरे पास नहीं आवेगी क्योंकि वे मनस्विनी हैं अतः मैं किसप्रकार प्राणरक्षा करूंगा यही दैन्य भाषण का अभिप्राय है।

इदानीं स्वस्याविवेकित्वं सापराधित्वं चाह-मयेति हे इति खेदे विदयेन मया जानकी नार्चिता न सत्कृता

अन्याभिः सह स्थितमात्रं मां वीक्ष्य सा सन्तप्ता भविष्यतीति जानताऽपि मया पूर्वमाकारणं न कृतमिति अतोऽहं निर्दयः इत्याशयः। अर्चयां हेतुः पदेति पदकान्तिभिर्निर्जितानि तिरस्कृतानि पंकजानि कोकनदानि यया सा तदंघ्रिसाम्येच्छया तानि विकसन्ति निर्जितानि पुनः संकुचन्तीति भावः।

इस समय अपने को अविवेकी तथा अपराधी स्वीकार कर रहे हैं, हा ? खेद का विषय है, मैं निष्ठुर हूं क्योंकि मैंने श्रीप्रियाजू का सत्कार नहीं किया-अन्य नायिकाओं के साथ किञ्चित् स्थित देखकर भी मुझसे वह मानिनी प्रणयकोप से सन्तप्त हो जायंगी ऐसा जानता हुआ भी मैंने प्रथम ही श्रीप्रियाजूको नहीं बुलाया अतः मैं निर्दय हूँ यह आशय है। अर्चा में हेतु देते हैं—जिन्होंने अपनी पादशोभा से अरुण कमल के सौरस्य सौरभ कोमलता आदि को जीत लिया है—कमलसमूह श्रीलाडिलीजू के श्रीचरणों की समता करने के लिये विकसित तो होता है किन्तु आपकी पाद शोभासे तिरस्कृत होकर पुनः संकुचित होजाता है यह भाव है।

कोपं ज्ञात्वापि त्वरयासौ कुतो न प्रसादिता तत्राह तदह्वतीति तदनाह्वानं तया संचित उपार्जितो मन्तुरपराधो येन तथाभूतेन मया अतोऽतिभयेन शंकाकुलेन कोपवशात् संयोग विरोधिनं कंचन सपथं सा कुर्यादिति भयात्त्वरितं न प्रसादिते-

त्याशयः ॥२॥ अतः परं तत्प्रसादाय कमुपायं करिष्यामीति परामृशति यामिति तदानयनाय कां भामिनीं कोपमुद्राङ्कितां कां दूतीं शरणंयामि। यया भामिन्यो दूत्या सा मम वल्लभा-जानकी विमतिशमनाय भविता । अन्यतरुणीरतो राम इति विरुद्धबुद्धि परिहाराय भविष्यति विलुप्तमद्विरुद्धाचरणा-वबोधा सा भवेदिति यावत्।

श्रीप्रियाजू का कोप जानकर भी शीघ्र क्यों नहीं प्रसन्न किया ? इस भाव से कहते हैं कि—श्रीप्रियाजू को नहीं बुलाने से मैंने अपराध उपार्जित किया उसी अपराध के भय से सशंकित होकर "अर्थात् कोप परवश श्रीप्रियाजू कोई संयोग विरोधी सपथ न कर लें इसी भयसे" शीघ्र प्रसन्न नहीं किया। अब आपकी प्रसन्नता के लिये क्या उपाय करूंगा, यह विचार करते हैं-यामि इस पद से-श्रीप्यारीजू को यहां लाने के लिये प्रणय कोपयुक्त किस दूती के शरण में जाऊँ, जिस नायिका के द्वारा मेरी प्राणवल्लभा का मानशमन हो जाय 'अन्य तरुणी में प्रियतमरत हैं' इस विरुद्ध मति को तथा मेरे शुद्ध आचरण में कल्पित विरोध भाव को हटाने में समर्थ हो

अयं भावः अतिप्रवीणां प्रगल्भां काञ्चिद्दूतीं प्रेषयामि या जानक्यै कृततानमानसां मां निवेदयन्ती तदानन्दार्थं समाज-रचनां प्रत्यापयन्ती तां प्रसादयेदिहानयेच्चेति। कविराह हरि

रिति–हे भक्ताः ! हरिकृत जानकीमानत्रस्तरामवचनरूपं गीतं पिवत सादरं शृणुत कीदृशं अनुगतः सीतानुरागवशीभूतो यो दाशरथिर्दशरथराजपुत्रः परमरसिकःतस्य वचनेनोक्तप्रकारेण हारि मनोहरं कीदृशेन तद्वचनेन भासिता प्रकाशिता भावस्यानुरागस्य गति रचनासञ्चार निर्मितिर्येन तत् श्रोतृणां संसारभयनिवर्तकम् ।

भाव यह है कि श्रीप्राणवल्लभजू ऐसा विचारते हैं कि अत्यन्त प्रवीणा किसी दूती को भेजता हूँ जो श्रीप्यारीजूको मेरे प्रियाप्रेमपरबशभाव को उन्हें समझावें, तथा ऐसा बचन कहे कि प्रियतम ने तो आपही के आनन्द के लिये समाज की रचना की थी । ऐसा विश्वास दिलाकर श्रीप्रियाजू को प्रसन्नकर यहां ले आवे । श्रीहर्य्याचार्य कहते हैं कि हे भक्तो ! श्रीप्रियाजू के मान से भयभीत प्रियतम के वचन रूप गीत को श्रवणपुट से पान करो अर्थात् सादर श्रवण करो । कैसा वचन है ? अनुगत है अर्थात् श्रीप्रियानुरागपरवश रसिकशिरोमणि श्रीचक्रवर्तीन्द्रकुमारजू के पूर्वोक्त वचनों द्वारा मनोहर है तथा जिनके प्रत्येक सूक्ति में अनुराग की रचनाएं भरी हैं तथा श्रोताओं का भवभय नाशक है।

पूर्णेन्दुसुन्दरमुखी चपलायताक्षी-
सा चेत् कृपां न कुरुते मयि राजपुत्री ।
तत्किं फलं प्रवरया मम राजलक्ष्म्या-
किम्वानया मृदुलयौवनसम्पदा च ॥ २

अर्थ—पूर्णचन्द्र के सदृश मुखवाली चपल तथा विशाल नेत्रवाली श्रीराजनन्दिनीजू यदि मुझपर कृपा नहीं करेंगी-तब इस मेरी विशाल राज्यलक्ष्मी से मुझे क्या लाभ ! तथा नूतन-तरुणावस्था से क्या प्रयोजन ।

भाष्यम्—पुनरपि परितपति पूर्णेति सा राजपुत्री जानकी मयि चेत कृपां न कुरुते तर्हि मम राजलक्ष्म्या साम्रा-ज्याधिपत्येन किं किं फलं प्रयोजनम् । अनया मृदुलयौवन-सम्पदा च नवतारुण्येन किं किं फलम् कीदृशी सा पूर्णेन्दु-सुन्दरमुखी निष्कलंकत्वेन सदोदितत्वेन च पूर्णचन्द्रादपि मुखस्यातिचारुत्वम् चपले आयते आकर्णान्तविस्तीर्णे चाक्षिणी यस्याः सेत्यासक्तिर्व्यज्यते । सर्वाङ्गशोभोपलक्षण-मेतत् ॥

अर्थ—श्रीराजनन्दनजू फिर पश्चात्ताप करते हैं-यदि वे राजकुमारी श्रीमिथिलाधिपनन्दिनी मुझ पर कृपा नहीं करेंगी, तब मुझे इस राज्यलक्ष्मी तथा विशाल साम्राज्य के आधिपत्य से क्या प्रयोजन ? तथा इस नूतन तरुणाई से क्या लाभ ? श्रीराजकिशोरीजी कैसी हैं ? पूर्ण चन्द्र के सदृश मुख वाली हैं चन्द्रमा सकलङ्क तथा घटता बढ़ता है किन्तु आप का मुखचन्द्र तो निष्कलङ्क है तथा सर्वदा एक रस विकसित रहता है । अतः पूर्ण चन्द्रमा से भी श्रीप्रियाजू के मुख की उत्कृष्टता

सूचित करते हैं। जिनके कर्णपर्यन्त विशाल तथा चञ्चल दोनों नेत्र हैं। ऐसी सौन्दर्य्यशालिनी हैं। यह सर्वाङ्ग शोभाका सूचक है—अर्थात् मुख नेत्रों की शोभा का वर्णन से सभी अङ्गों की शोभा का वर्णन जानना चाहिये।

अयं भावः यद्दर्शनसातत्याय पित्रादेशप्रतिपालनमिषेण राज्याधिपत्यं हित्वा मित्रमनुजं स्वरक्षायै गृहीत्वाऽहं विपिनवासमङ्गीकृतवान् सा प्राणाधिकप्रेष्ठा जानकी चेन्मां त्यक्तवती तर्हि राज्यं विहाय तारुण्योचितं वेषभूषणं चापनीय पुनस्तपस्सेवनं प्रवेक्ष्यामि येनासौ प्रियामय्यनुरज्येदिति ॥२॥

भाव यह है कि जिन श्रीप्रियाजू का निरन्तर दर्शन के लिये मैंने पिताजी की आज्ञा के मिस राज्याधिपत्यको छोड़कर तथा श्रीलक्ष्मणकुमार को अपनी रक्षा के लिये साथ लेकर मैंने विपिन बास अङ्गीकार किया, वह प्राण से भी अधिक प्रिय श्रीराजकिशोरीजू ने यदि मुझको त्याग दिया, तब मैं राज्य को छोड़कर तरुण अवस्था के उचित वेष आभूषणों को हटाकर पुनः तपस्या करने के लिये जङ्गल में प्रवेश करूँगा जिससे मेरी प्रियाजू मुझमें अनुरक्त हो जायँ ॥२॥

❀ इमन रागे त्रितालो ताले ❀

विषमशरशरनिकरकलितमृदुमानसा ॥
विरहदववलितवपुरुपतपति हा न सा ॥ १ ॥

जानकीरतिबिरहिणो मम किमिह शरणम् ॥ध्रु०
जनकतनयां बिना मधुरमधुवासराः ॥
विफलतरतां दधति न खलु सुखहासराः ॥ २
कथमतुलसमयममुमरतिकरमञ्चये ।
परिपतितमतिगहनतमसि विपदाञ्चये ॥ ३ ॥
हरिवचसि रघुकुलतिलकबिरहभरभूषिते ।
भावमनुशीलयत शंकरमदूषिते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीप्रियतमजू श्रीप्रियाजू की बिरहावस्था का स्मरण कर खिन्न होरहे हैं हा ! वह कोमल हृदयवाली कामदेव के शर समूह से विद्ध तथा विरह अग्नि से घिरे हुए शरीर वाली श्रीप्रियाजू क्या नहीं तप रही होंगी ? (अवश्य संतप्त होंगी) श्रीमैथिलीजूके अनुरागसे रहित होनेसे कौन वस्तु मेरी रक्षक होगी ? क्योंकि श्रीराजकिशोरीजू के बिना अत्यन्त प्रिय सब सुखप्रद, यह वसन्त समय भी विपरीत फल देरहा है, सुख मय विलास नहीं दे रहा है। मैं किसप्रकार कष्टप्रद इस विशाल वसन्तकाल को बिताऊं। मैं अत्यन्त अन्धकार रूप विपत्ति समूह में पड़ा हूं। ग्रन्थकार कहते हैं कि—श्रीरघुकुलभूषणजू का विरह समूह से भूषित तथा दूषणों से रहित मेरे वचनों में कल्याणप्रद भावों का आप सब अनुशीलन करें।

भाष्यम्—अथ तपस्विनि मयि कथं सा जीविष्यति

तया विरहितश्चपलमनाः कथं वाहं तपस्येयम्। इतितत्सुखैक-कामस्तदतिरक्तश्च परामृशति विषमेति-विषमशरस्य शर-निकरैर्मोहनोच्चाटनधर्मभिर्बाणगणैः कलितं विद्धं मृदु कोमलं च मानसं चित्तं यस्याः सा स्मरशरसमूहविद्ध-चित्तेत्यर्थः विरहो विच्छेदः स एव दवो वनाग्निस्तेन वलिता वेष्टिता तनुर्यस्याः सा किं नोपतपति अपितूपतपत्ये-वेत्यर्थः हेति खेदे अत्र तनोर्हरिणी सादृश्यं व्यङ्ग्यम्' जानकीरतिः सीतानुरागतस्या विरहोऽभावस्तद्विशिष्टस्य मम किं वस्तु शरणं भवेत् सा चेन्मयि विरक्ता तर्हि मे प्राण-धारणं दुःशकमित्यर्थः॥ १॥ जनकेति अतिप्रियाः ये मधुवासराः वसन्तदिवसाः ते जानकीं विना अति वैफल्यं दधति पुष्णन्ति यतः सुखहासरा नेति सुखात्मकं हासं विनोदं रान्ति प्रयच्छ-न्तीति तादृशा नेत्यर्थः जानकीतनुकान्ति संचारादेव ते सुखहेतवो नतु स्वतः इति सैवानन्दयित्रीत्यर्थः।

मुझे तपस्वी हो जानेपर वह मेरी प्राणवल्लभा कैसे जीवित रहेंगी तथा उनसे बियुक्त होकर मेरा मन चञ्चल रहेगा अतएव मैं कैसे तपस्या करूँगा इत्यादि श्रीप्रियाजू के सुखकी कामना से उनमें अनुरक्त होकर श्रीप्रियतम विचार कर रहे हैं। विषम-इस पद से-कामदेव के मोहन-उचाटन आदि धर्मवाले

बाण समूहों से बेधित होकर सुकोमल चित्तवाली विच्छेद रूपी दावानल से जिनका शरीर वेष्टित है ऐसी श्रीराजनन्दिनीजू क्या-सन्तप्त नहीं होंगी ? अर्थात् अवश्य सन्तप्त होंगी। यहां तनु (शरीर) का हरिणी के सदृश व्यङ्ग्य है, श्रीमैथिलीजू के अनुराग के अभाव में मेरे लिये कौन वस्तु शरण हो (अर्थात् श्री-प्रियाजू का अनुरागही मेरा जीवनोपाय है उससे रहित होकर मैं नहीं जी सकता हूँ) यदि वह मुझसे विरक्त हैं तब मेरे लिये प्राणधारण दुःसाध्य है। अति प्रिय यह वसन्तकालभी श्रीप्रिया-जू के विना विपरीतफल को देरहा है—क्योंकि सुखप्रद विनोद नहीं प्रदान करता है। श्रीप्राणप्यारीजूकी तनुकान्ति के सम्बन्ध से ही ये सभी भोगसामग्रियाँ सुख साधक थीं, स्वयं नहीं, अत-एव वे ही श्रीप्राणवल्लभाजू आनन्द देने वाली थीं।

तां विना प्राणधारणं दुःशकमिति स्फुटयति कथमिति-अतुलं निरूपममगुं समयं वसन्तकालमरतिकरं क्लेश-प्रदं सन्तं कथमहमश्वये पूजयामि नपामीत्यर्थः हंत हंत जानकीं कोपयित्वा विपदाश्वये क्लेशराशौ मया परिपतितं मग्नमिति भावेनिष्ठा। अतिगहनतमसि निविडान्धकाररूपे तां विना सर्वा दिशो घनान्धकारा अभूवन् इतिभावः ॥ ३ ॥ कविराह हरिरिति श्रीरघुकुलतिलकस्य दाशरथेः विरहभरेण भूषिते हरि वचसि भावं भावं प्रति अनुशीलयत कुरुत यूयं हे भक्ताः!

कीदृशं शंकरं सुखकरं कीदृशे अदूषिते विशुद्धप्रेमरीतेरन्या-वादितिभावः ॥४॥

श्रीप्रियाजू के बिना जीवनोपाय दुर्लभ क्यों ? इस बातको स्पष्ट करते हैं:—निरूपम यह वसन्त काल क्लेशप्रद होने से किस प्रकार मैं इनकी पूजा करूँ अर्थात् श्रीप्रियाजू के बिना कैसे विताऊँ । हन्त ! श्रीप्रियाजू को कुपित करके मैं सघन अन्धकाररूप विपत्ति समूह में मग्न हूं । अर्थात् श्रीराजनन्दिनीजू के बिना सारी दिशायें पूर्ण अन्धकार युक्त प्रतीत होरही हैं । यह भाव है । ३ । ग्रन्थकार कहते हैं:—श्रीचक्रवर्तीकुमार के विरह समूह से विभूषित मेरे वचनों में प्रत्येक भावों को आप भक्त गण अनुसन्धान करें कैसा वचन है सुखकर है तथा अदूषित है विशुद्ध प्रेमरीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं वर्णन है ॥४॥

श्लोक—विधुरितवदनो विमुक्तभोगः
स्मरशरजर्जरितान्तरः खरारिः ।
विलुठति विपिने वसन्त-
लक्ष्मीसुभगतमे विगतप्रियान्यभावः ॥१॥
विनैव दोषान् विहितातिरोषा
विभाषिनासौ परुषा बभूव ।
कोऽत्राप्युपायो भवितेति रामे-
विचिन्तयत्यागमदिन्दुरेखा । २॥

इति श्रीहर्य्याचार्य बिरचिते श्रीजानकीगीते
श्रीरघुनन्दनविरहव्यथावर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

अर्थः—श्रीचक्रवर्तीन्द्रनन्दनजू का (श्रीप्रियाजू के वियोग में) मुख फीका पड़गया है आपने सभी भोगों को त्याग दिया है, कामदेव के बाणों से आपका हृदय जर्जर होरहा है, श्रीप्रियाजू को छोड़कर अन्य किसी भी नायिकाओं में इस समय आपका प्रेम नहीं है। (प्रियतमजू) बसन्त लक्ष्मी से सुशोभित निकुञ्ज में लोट रहे हैं ।१। आप विचारकर रहे हैं कि विना दोष के ही श्रीप्रियाजू अत्यन्त प्रणय कोप करगई हैं तथा विरुद्ध भाषण कर बैठी हैं—अब श्रीप्राणवल्लभाजू के कोपशान्ति का उपाय क्या हो सकता है ऐसा विचार करही रहे थे कि उनके समक्ष श्रीचन्द्रकलाजू आगई ॥ २ ॥

भाष्यम्—एवं प्रियानुरागविवशोरामस्तत्प्रसादोपायमप्यपश्यन् मूर्छितो भूमौ न्यपतदित्याह विधुरितेति—विपिने खरारिः श्रीरामो विलुठतीत्यन्वयः- कीदृशः सन् विधुरितवदनो निष्प्रभमुखः विमुक्तभोगस्त्यक्ताशनपानः स्मरेति कामवाणजीर्णमना इत्यर्थः कीदृशे विपिने वसन्तेतिधृतनाराचाः स्मरसेना इव सकलिकास्तरुवल्लीः कलयतीत्यर्थः खरारिरपि सम्प्रति सीतासहायाभावात् कामेनाभिभूतः

क्षेत्रे निपतित इति भावः ॥ अतो विगतेति सीते सीते इति जपन् वर्तत इति भावः ॥ १ ॥

अर्थ—इस प्रकार श्रीप्रियानुराग परवश श्रीराज-नन्दनजू श्रीप्रियाजू की प्रसन्नता का उपाय न देखकर मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े इसीको "विधुरित" इस श्लोक से ग्रन्थकार कहते हैं—विपिन में श्रीराजनन्दन लोट रहे हैं, समस्त भोगों को—"भोजन जलपान, आदिको" त्याग देने से कान्ति हीन हो रहे हैं तथा काम बाणों से हृदय जीर्ण होगया है, वसन्त काल में वृक्ष लताओं में नवीन कलियां निकलती हैं.) यहाँ ऐसी प्रतीति हो रही हैं मानो काम की सेनायें बाणों को लिये हुये विरहियों के प्रति प्रहार करने के लिये उद्यत हो यह भाव है । खरारि होते हुए भी इस समय श्रीमैथिलीजू की सहायता के बिना काम के द्वारा पराजित होकर युद्ध क्षेत्र में गिरे हुए हैं । अतएव अन्य बनिताओं से चित्तवृत्ति को खींचकर श्रीप्रियाजू के नामों का जपकर रहे हैं यह भाव है ।१।

इत्थं च विचारयतीत्याह विनैवेति कीदृशी मम दोषान् विनैव विहितातिरोषा कृतगुरुकोपा ननु दोषान् विना रोषा-सम्भावो भवेदत आह–विभाषितेति–विरुद्धं भाषिता स्थूल-धिया सख्या यथा गदितं तन्निशम्यैव तत्वमविचार्यैव तया रोषः कृतः अत्र सीतारोषशान्तौ क उपायो भविष्यतीति

रामे विचिन्तयति सति इन्दुरेखा चन्द्रकलाऽऽगमत् आगतवतीति समाधिरलंकारः ।

इति श्रीवल० सू० वि० श्रीजानकीगीतभाष्ये तृतीयः सर्गः ॥३॥

दोष के बिनाही श्रीप्रियाजू मुझ पर कुपित होगई हैं—अर्थात् बड़ाही क्रोध किया है । यदि कहा जाय कि दोषों के बिना रोष असम्भव है—उसपर कहते हैं कि—"विभाषिता" विरुद्ध भाषण करने के कारण, सखियों ने जैसा कहा वैसाही सुन कर तत्वों को नहीं विचार कर श्रीप्रियाजू ने कोप किया । श्रीराजकिशोरीजू का कोप शान्त होने का क्या उपाय होगा ऐसा विचार ही रहे थे कि श्रीमतीचन्द्रकलाजू श्रीप्रियतमके समक्ष आगई ॥२॥

इति श्रीसद्गुरुसदनीय पं० श्रीसीतारामशरण कृत
'रसबोधिनी' भाषाटीकायां तृतीयः सर्गः ॥३॥

श्लो० वैदेही मर्मज्ञा श्रीरामं सावादीत् १ यां विना तत्र दशा विषमेयं राघवेन्द्र भगवन्नुपजाता तां नृपेन्द्रतनयां नु तदानीं मानिनीं स्मृतिपथं न निनाय ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीवैदेहीजू के मर्मको जानने वाली श्रीचन्द्र-कलाजू श्रीप्रियतमजू से कहती हैं कि हे श्रीराजनन्दनजू जिनके विना आपकी यह विषमदशा होरही है उन श्रीराजकुमारी मानिनीजू को उस समय समाज रचना के समय आपने स्मरण नहीं किया ॥ २ ॥

भाष्यम्—सा चन्द्रकला सीतान्तिकादागता श्रीराम-मवादीत्-युक्तमवोचत् कीदृशी वैदेही मर्मज्ञा सीताया रामै-कतानमनस्त्वं जानती ॥ नारी छन्दः-तदुक्तम् भो नारी ।१। निरपराधमपि सापराधमिवोपालम्भनमुद्रया पूर्वमाह यामीति

अर्थः—श्रीमती चन्द्रकलाजू श्रीप्रियाजू के सन्निकट से आकर श्रीप्यारे से कहती हैं:—कैसी हैं १ श्रीप्राणवल्लभा का मर्म जानती हैं अर्थात् श्रीप्रियाजू अनन्य भाव से श्रीप्रिय-तमजू का चिन्तन कर रहीं हैं ।१। (नारी छन्द है) निरपराध प्रियतम को अपराधी के सदृश उपालम्भ मुद्रा से कहती हैं-

हे भगवन् राघवेन्द्र ! यां विना तवेयं विषमा दशमी दशा उपजाताऽभवत् तां नृपेन्द्रतनयां जनकमहाराजसुतां तदानीं वसन्तोत्सवारम्भे स्मृतिपथं न निनाय न सस्मार भवान् , कीदृशीं मानिनीं सत्कारार्हां महाराजपुत्रीत्वान्मनस्विनीमिति वा । सर्वेश्वरोऽपि भवानीदृशं सन्तापं प्राप्तः तस्याः सर्वोत्तमायाः पूर्वं समानयनमुचितमितिनिष्कर्षः ॥२

हे श्रीचक्रवर्तीनन्दन श्रीराघवेन्द्र ! जिनके बिना आपकी यह दशमी दशा होरही है उन श्रीमिथिलाधिपराजतनयाजू को आपने वसन्त उत्सव के आरम्भ में स्मरण नहीं किया । वे मानिनी हैं सत्कार के योग्या हैं तथा महाराज पुत्री होने के कारण मनस्विनी हैं । अतः सर्वेश्वर होते हुए भी आप ऐसे सन्तापको पारहे हैं । उनको पूर्व ही यहां लाना अत्यावश्यक था यह निष्कर्ष है ॥ २ ॥

❀ नायिकीरागे त्रितालीताले ❀

शशिकरजाले पतति कराले
विषमविशिखशरकल्पे ।
शिथलितकेशा विलुलितवेषा
लुठति धरणितलतल्पे ॥१॥

रघुबर सीता तड़िदतिपीता

निवसतिविपिनबिताने ॥ ध्रु० ।

विचलति मन्दे मरुति सुगन्धे

परितनुतेऽतिविलापम् ।

क्वचिदति दीना सपदि विलीना

विरसमना वत तापम् ॥२॥

ध्वनदलि पुञ्जे विचकिलकुञ्जे

कलयति सा निजघातम् ।

रचयति विजने वरवपुरवने

तवचरणे प्रणिपातम् ॥ ३ ॥

हरिकविगीते रुचिपरिवीते

राघव चित्तविदारे ।

उपरतबाधे हृदयमगाधे

धारयताखिलसारे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीमती चन्द्रकलाजू कहती हैं कि हे श्रीराजेन्द्रनन्दन रघुबर ! (श्रीप्राणवल्लभाजू) बिजली से भी अधिक पीतमती अर्थात् गौराङ्गी, कुञ्ज के लता वितान के नीचे निवास कर रही हैं जब कामदेव के बाणों के सदृश

अत्यन्त कठोर चन्द्रकिरणें श्रीप्रियाजूके ऊपर पड़ती हैं तब पृथिवी पर लोटती हैं। आपके केश पाश खुलगये हैं तथा शृङ्गार सब नष्ट हो गये हैं।१। जब शीतल, मन्द सुगन्ध वायु चलती है तब शीघ्र किसी निर्वात (वायु रहित) कुञ्ज में छिपकर अति दीना होकर विरस मनसे तापयुक्त होकर अत्यन्त विलाप करती हैं।२ जब विकसित कुञ्जों में भ्रमर गुञ्जार करता है तब अपनी मृत्यु की कल्पना करती हैं कभी अपने सुन्दर शरीर की रक्षा के लिये कुञ्ज के स्फटिक भीति में आपका चित्र बनाकर आपके चरणोंमें अपनी रक्षाके लिये आपसे प्रार्थना करती हैं ३। ग्रन्थकार कहते हैं कि हे भक्तो ! रुचि युक्त, श्रीराजनन्दनजू के चित्त को विदीर्ण करने वाली, समस्त संसार क्लेश नाशक अखिल शास्त्रों का सार तथा भावपूर्ण होने से अगाध इस गीतको अपने हृदय में धारण करो ॥४॥

एवं राममुपालम्भ्याथ प्रियानुरागं श्रावयन्ती तमानन्दयति 'शशीति' हे रघुवर ! विपिनविताने सीता निवसति कीदृशी तडिदति पीता सौक्ष्म्यचापल्याभ्यां तडितः सम्यक् प्रीतमानुपलम्भात्ततोऽपि अतिपीता प्रशस्तपीतमती विपिनविताने—इति विरहविभ्रान्तचित्ततयैकत्रस्थिता कथं निवसतीत्यत्राह शशीति चन्द्रकिरणवृन्दे निपतति सति धरणितलतल्पे पृथिव्यां लुठति कीदृशे–इत्याहविषमेति कामवाण-

तुल्ये, यदा स्मरशर इव चन्द्रविन्दवो लतान्तरालात् पतन्ति तदा भयाल्लुठति । कीदृशी सती-इत्याह शीथिलेत्यादि अतिविह्वलत्वं दर्शितम् ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमती चन्द्रकलाजू श्रीप्राणवल्लभजू को उपालम्भ देकर अब प्रियानुराग सुनाकर श्रीप्रियतम को आनन्दित करती हैं शशिकर" इस पद से—हे रघुवर ? श्रीराजकिशोरीजू इस समय लतामण्डप में निवास कर रही हैं, कैसी हैं ? बिजुली से भी अधिक पीत (गौराङ्गी) हैं, सूक्ष्म तथा चपल होने से विजुली में सम्यक् पीत की उपलब्धि नहीं होती अतः इन दोषों से रहित होने से श्रीप्रियाजू प्रशस्त गौराङ्गी हैं। विरह से विशेष भ्रान्तचित्त होनेके कारण श्रीप्रियाजू एकत्र स्थित होकर लतामंडप तर कैसे निवास कर रही हैं ? (श्रीप्रियतमजू की ऐसी आकांक्षा पर श्रीमती चन्द्रकलाजू कहती हैं कि-) जब काम वाण के सदश चन्द्रमा की किरणें लताओं के मध्य से श्रीप्रियाजू के ऊपर गिरती हैं तब उनके भय से आप पृथिवी पर लोट जाती हैं। कैसी अवस्था में प्राप्त हैं ?—शिथिल हैं अर्थात्—शृङ्गार सम्बन्धी वेषभूषण आदि सभी गिरे हैं। इससे अत्यन्त विह्वलता सूचित किया ॥ १ ॥

सुगन्धे च मरुति विचलति सति तद्भयात् क्वचिन्निवर्तिते कुञ्जे विलीना सती अति विलापं यथा स्यात्तथा तापं

परितनुते । अतिदीना श्रीरामौदासीन्यशंकयातिदैन्यं प्राप्तेत्यर्थः । सुगन्ध इत्यत्रसमासान्तस्याच्प्रत्ययस्याभावः समासान्तानां सर्वेषां विकल्पाङ्गीकारात् । विरसमना निरास्वाद चित्ता ॥ २ ॥ विचकिलकुञ्जे मल्लीमण्डले ध्वनदलिपुञ्जे सति सा निजघातं कलयति अहं म्रिय इति मनुते । अथ कामशरविद्धा यद्यहं म्रिये तर्हिं मदेकजीवनस्य रामस्य का गतिरिति तत्क्लेशशंकया स्वजीवनोपायं करोति इत्याह "रचयतीति"-क्वचिद्विजने स्फटिकभित्तौ त्वां विलीख्य तवचरणे प्रणिपातं करोति मां कामवाणेभ्यस्त्रायस्वेति वरस्य वपुषोऽवने रक्षणे निमित्ते ॥ ३ ॥

अत्यन्त शीतल-मन्द सुगन्ध वायु चलने पर भयभीत होकर किसी निर्वात (वायु रहित) कुञ्ज में छिपकर अति विलाप करती हुई सन्ताप युक्त हो जाती हैं, श्रीप्रियतमजू की उदासीनता की शंका से अत्यन्त दैन्य अवस्था को प्राप्त हैं। विरसमना--अर्थात् स्वाद से रहित चित्तवाली हो रही हैं ॥२॥ पुष्पलताओं से सुशोभित कुञ्ज में जब भ्रमर गुञ्जार करता है तब श्रीप्रियाजू अपनी घात समझती हैं । पुनः विचारती हैं कि यदि मैं कामशर से विद्ध होकर मर जाऊँ तब जिनके जीवन मैं हीं हूँ ऐसे श्रीप्राणवल्लभजू की क्या अवस्था होगी ? अतः प्रिय तम के क्लेश की आशंका से अपने जीवन का उपाय करती

हैं। उसीको 'रचयति' इस पद से कहते हैं अपने श्रेष्ठ शरीरकी रक्षाके लिये-कहिं स्फटिक की भीतिमें आपका चित्र लिखकर आपके चरणों में प्रणाम करती हैं तथा प्रार्थना करती हैं कि मुझे काम बाण से रक्षा कीजिये ॥ ३ ॥

कविराह हरिरिति हे भक्ताः हरिकविगीते हृदयं धारयति यूयं कीदृशे रुचिः प्रसादहेतुका कवित्वं कान्तिस्तया परिवीते युक्ते राघवस्य श्रोतुर्जानकीखेदश्रवणेन चित्तं विदारयति । उपरत बाधा संसारक्लेशः सीतावैमनस्य कृताऽन्यथा वा येन तस्मिन्नगाधे भावगाम्भीर्य्यवति-अखिलेभ्यः शास्त्रेभ्यः श्रेष्ठे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीहर्य्याचार्य कहते हैं कि हे भक्तो ! मुझ हरि की गीत को आप सब हृदय में धारण करें कैसी गीत है? प्रसन्नता के हेतु कविता की छबि से युक्त है तथा श्रीप्रियाजू का खेद श्रवण से श्रीप्रियतमजू के चित्त को बिदारक है। संसार का क्लेश का नाशक है और अगाध है अर्थात् भाव की गम्भीरता से युक्त है एवं समस्त शास्त्रों का सार है ॥४॥

श्लोक—आचम्यवाचं रघुनन्दनोऽस्याः,
सीतानुरागामृतचारुवर्णाम् ।
समुच्छलत् प्रेमभरः प्रयान्तु,
तदन्तिकं संत्वरितो बभूव ॥ १ ॥

विप्लुष्टचामीकरचारुकान्तिं,
संवीक्ष्य कान्तां वत राघवेन्द्रः।
विवर्णभाः संनतवक्त्रचन्द्रां,
कृताञ्जलिर्मानवतीं बभाषे ॥२॥

अर्थ—श्रीप्रियानुरागामृत से सिञ्चित तथा मनोहारिणी श्रीचन्द्रकलाजू की बाणी को सुनने से श्रीप्रियतमजू के हृदय में प्रेम समुद्र उमड़ आया अतः श्रीप्रियाजू के समीप चलने के लिये अत्यन्त शीघ्रता करने लगे ॥ १ ॥ सन्तप्तकाञ्चन के सदृश सुन्दर कान्ति युक्त, अपने मुखचन्द्र को नीचे किये हुये विरह के कारण कुछ म्लान कान्ति होगई है ऐसी श्रीमिथिलाधिपराज-नन्दिनी-मानिनीजू को देखकर श्रीराजनन्दनजू अञ्जलिबद्ध होकर प्रार्थना करने लगे ॥ २ ॥

भाष्यम्—एवं सीतार्तिं श्रुत्वा रामः किमकरोदित्याह "आचम्येति" अस्याः इन्दुरेखायाः वाचमाचम्य निपीय सादरं श्रुत्वा रघुनन्दनस्तदन्तिकं सीतासन्निधिं प्रयान्तुं संत्वरितः सम्यक् त्वरया युक्तो बभूव कीदृशीं वाचमित्याह सीतेति यस्याः वर्णेभ्यः सीतानुरागः क्षरतीत्यर्थः। कीदृशः सन् संत्वरितो बभूवेत्यपेक्ष्य विशिनष्टि "समुच्छलत्" इति

यत्कोपभयात् वेपमानोऽहं नोपायमलभम् सा प्रिया चेन्मयि रागभरमतनोत्तदा मे भाग्यातिशय इतिसमुद्रिक्तस्नेहवारिधिरित्यर्थः ॥१॥

इस प्रकार श्रीप्रियाजू की विरहव्यथा को सुनकर श्रीप्रियतमजू ने क्या किया उसी को कहते हैं:—श्रीमती चन्द्रकलाजू की बाणी को सादर श्रवण कर श्रीरघुनन्दनजू श्रीप्रियाजू के समीप चलने के लिये त्वरायुक्त हो गये । श्रीचन्द्रकलाजू की वाणी के प्रति वर्णों से प्रियानुराग टपक रहा है, किस प्रकार शीघ्र चलने के लिये उद्यत हुये इस आशय से कहते हैं कि:—जिनके कोप के भय से मैं काँपता हुआ कोई उपाय नहीं देख रहा था, वे श्रीप्रियाजू यदि मुझमें अत्यन्त अनुरक्त हैं तब मेरा अत्यन्त सौभाग्य है । ऐसा विचारने से आपके हृदय में स्नेह सागर उमड़ आया ॥ १ ॥

विप्लुष्टेति सीतान्तिकंप्राप्तो राघवेन्द्रः तां कान्तां मानवतीं वीक्ष्य कृताञ्जलिः सम्पुटितकरयुग्मः सन् बभाषे प्रोवाच । कीदृशः विवर्णभाः विरहाग्नितापेन वैवर्ण्यं प्राप्तः कीदृशीं विप्लुष्टं दग्धं यच्चामीकरं सुवर्णं तस्येव कान्तिर्यस्यास्तां विरहवह्निपरितापेन हिंगुलवर्णतां प्राप्तामित्यर्थः । संनतो वक्त्रचन्द्रो यस्यास्तां "उपमितिं" समासेन लम्बमानपूर्णविधुतुल्यमुखमण्डलामित्यर्थः अन्तरनुरक्ता वहिः परुषासौ पावकरसपूर्णं काचपात्रीव तेन दृष्टेति ध्वनितम् ॥२॥

विरहाग्नि ताप से विह्वल श्रीप्राणवल्लभजू श्रीप्रियाजू के समीप प्राप्त होकर उनको मानयुक्त देख दोनों हाथ जोड़ कर बोले । श्रीप्रियाजू कैसी हैं ? विरहाग्नि के ताप से विवर्णता (विह्वलता) को प्राप्त हैं तपाये हुए सुवर्ण की कान्ति के सदृश कान्तिवाली विरहाग्नि के ताप से हिंगुल (सिन्दूर) के तरह लाल हैं । तथा जिनका पूर्णचन्द्र तुल्य मुखमण्डल नमित है भीतर से अनुरक्त तथा बाहर से कुपित हैं अर्थात् पावक रस पूर्ण काचपात्री के सदृश प्रियतम ने देखा । यह ध्वनि है ॥२

॥ काफीरागे त्रितालो ताले ॥

कृपय कृपाभरणे मयि सीते,
त्वदकरुणानुभवादतिभीते ॥१॥
मधु समये मा तनु जानकि मानमये ॥ध्रु०॥
यदपि कमपि मम पश्यसि दोषम्,
अपनय तं किल न कुरु सपोषम् ॥२॥
त्वयि विनिहितमनसं दयिते माम्,
सुखय विमति त्रिपदं श्रृणु नेमाम् ॥३॥
रामवचनमभिराममुदारम्,
हरिभणितं परिशीलय सारम् ॥४॥

अर्थ—हे कृपा रूपी भूषण से भूषित श्रीराजनन्दिनीजू आपमुझपर कृपाकरें। आपकी अकरुणा (उदासीनता)का स्मरण कर मैं अति भयभीत हूँ ॥ १॥ हे जनकराजतनये ! ऐसे सुन्दर वसन्त काल में आप-मान नहीं करें। यदि आप मुझमें कोई दोष देखती भी हों तो आप उसे क्षमा करें। उसकी पुष्टि न करें ॥ २ ॥ हे प्राणवल्लभे ? मेरा मन आपमें अनन्य भाव से लगा हुआ है अतः मुझको सुखी करें, मान रूप विपति को न स्वीकार करें। ३। ग्रन्थकार कहते हैं कि मुझ (हरि) से रचित यह प्रियतमजू का अभिराम तथा उदार बचनरूप कविता का सार तत्वों का आप भक्त गण परिशीलन करें (मनन करें) ।४

भाष्यम्—कृताञ्जलिस्तां किमभाषत तदाह कृपयेति-हे सीते कृपाभरणे मद्विषयकदयाभूषणभूषिते मयि कृपय कृपां-विधेहि, भूसमुद्भूतायास्तव क्षमायुक्तै वेति सीते ? इतिसम्बोधनाभिप्रायः, अथवा कृपाभरणे त्वदनुग्रहसुन्दरे मयीति योज्यम् , त्वदनुग्रहाद् बिना तिलमात्रं मे सुन्दरता नास्तीति पश्यन्ती प्रतीहीतिभावः । वक्तुमपि मे शक्तिर्नास्तीति आह त्वदकरुणानुभवादौदासीन्यावगमः तस्माद्धेतोरतिभीते भयाकुले मयि अये जानकि मधुसमये वसन्तोत्सवे मानं मा तनु न विस्तारय नायं मानयोग्यः समयः ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीप्रियतमजू दोनों हाथ जोड़ कर क्या बोले, उसी को कहते हैं—हे सीते ! कृपाभरणे ! मुझ विषयक दया-भूषण से आप भूषित हैं मुझ पर आप कृपा करें पृथिवी से आप प्रगट हुई हैं अतः आप में क्षमा होना युक्त ही है, यही "सीते" सम्बोधन का अभिप्राय है। अथवा "कृपभरणे" का यह भी अर्थ है कि-आपके अनुग्रह से ही मैं सुन्दर हूँ-आपके अनुग्रह के बिना तिलमात्र भी सुन्दरता मुझमें नहीं है यह आप देखती हुई विश्वास करें। बोलने की भी शक्ति मुझमें नहीं है यह आप देखती हुई विश्वास करें। इसी अभिप्राय से आगे कहते हैं कि- आपकी उदासीनता के अनुभवसे मैं अति भयभीत हूँ अतः आप प्रसन्न होकर कृपा करें। हे श्रीराजनन्दिनि ! वसन्त समय में मान नहीं करें, यह मान के योग्य समय नहीं है।

विचारे कृते मम दोषो नास्त्येव अथापि चेन्मयि कमपि दोषं पश्यसि अर्पयसि तर्हि तं दोषं कृपावती त्वमपनय दूरी-कुरु तं पुनःसपोषं प्रष्टुं न कुरु। अयं भावः निरापराध-स्यापिसापराधत्वे कीर्त्यमाने यदि ते प्रसादस्तर्हि मया स्वीकृतं तत्कुतूहलिनी त्वं तु तत् क्षमस्वेति ॥ २ ॥

विचार करने पर तो मेरा दोष कुछ भी नहीं है तदपि यदि कोई दोष आप मुझमें देखती हों, तो उस दोष को आप

दूर कर दें क्योंकि आप कृपावती हैं, उसकी पुष्टि न करें। भाव यह है कि मुझ निरपराध को सापराध कहने में यदि आप की प्रसन्नता हो तो मैं अपराध स्वीकार करता हूँ परम कुतूहलिनी (क्रीड़ा करने वाली) आप तो क्षमा ही करें ॥२॥

एवं प्रार्थितामप्यवदन्तीं वीक्ष्याह त्वयीति–हे दयिते प्रेयसि जानकि त्वयि विनिहितमनसं मां सुखय त्वदर्पितचित्ताय मह्यं सुखं देहीत्यर्थः इमां विमतिविपदं विरुद्धबुद्धिरूपां विपत्तिं मानकलहमिति यावत् न वृणु न स्वीकुरु ॥ ३ ॥ कविराह राम इति–हे भक्तवर्ग। हरिभणितं रामवचनं प्रागुक्तविधं परिशीलय पठेत्यर्थः। परिशीलने हेतुः अभिरामं, कमनीयं, उदारं पुरुषार्थप्रदं अतः सारं श्रेष्ठञ्च ॥ ४॥

इसप्रकार प्रार्थना करने पर श्रीप्रियाजू को कुछ नहीं बोलती देखकर पुनः कहते हैं—हे दयिते ! हे प्रेयसि ? आपमें अर्पित चित्तवाले मुझको आप सुख प्रदान करें। यह विपत्तिरूप मान कलह को न स्वीकार करें ॥३॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि पूर्वोक्त प्रकार श्रीप्रियतमजू के वचनरूप मेरी कविता को हे भक्तवर्ग ! आप सब परिशीलन करें पढ़ें, क्योंकि यह कविता मनको आनन्दप्रद, अभिराम, उदार, तथा पुरुषार्थ को देने वाली है अतः सार श्रेष्ठ भी है ॥४

श्लोक-श्रीराघवेन्द्रवदनेन्दुसुधांनिपीय,
प्रक्षीणतद्विरहभास्करजाततापा ।
संफुल्लचित्तकुमुदाजनकात्मजासौ-
क्षीवेव विस्मृतविमानकथा बभूव ॥१
कुरु तरुणि रुषं नोपतापप्रपन्ने,
भज निजविजनं तारहारस्फुरन्ती ।
स्तनकनकनगौ शातपातप्रतप्तां-
तनुमनुतनुतां भावशावल्यवक्षाम् ॥२
प्रणम्यपादौजनकात्मजायाः-
प्रसादनं कुर्वति रामचन्द्रे ।
द्विपस्तथाप्रांशु जगर्ज वक्त-
स्तटीं यथासौ सहसाऽभ्यभेजे ॥ ३ ॥

इति श्रीहर्य्याचार्य विरचिते श्रीजानकी गीते श्रीजानकी-
मानमोचनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

अर्थ—श्रीप्रियतममुखचन्द्रचकोरी श्रीमिथिलेशराजकि-
शोरीजू श्रीप्रियतमजू के मुखचन्द्र से निकली हुई वाङ् माधुरी
को पानकर मानकथा भूल गईं। तथा प्रियतम के विरह रूप
सूर्य का ताप नष्ट होगया। अतएव श्रीप्रियाजू का चित्त रूपी
कुमुद विकसित होगया ॥१॥

अब पुनः श्रीप्रियतमजू कहते हैं-हे श्रीराजनन्दिनीजू! विरह ज्वर से सन्तप्त मुझपर आप कोप न करें, मुक्तामय हार को धारण कर अत्यन्त सुसज्जित होकर सर्वत्र प्रकाश करती हुई अपने क्रीड़ा निकुञ्ज में पधारें। और मेरा शरीर (आपका संयोग) सुख रहित होने से सन्तप्त होगया है इसको अपने स्वर्णशैल सदृश वक्षोज युग्मसे महासुख प्रदानकर स्वेद रोमांच कंपादि का बिस्तार करें। अर्थात्-आलिङ्गन द्वारा सुख प्रदान करें ॥२॥

इस प्रकार रसिकशिरोमणि श्रीरघुनन्दनजूने तरुणि-मणि श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजू के युगल मनोहर श्रीचरणों में प्रणामकर प्रसन्न किया। पश्चात् श्रीलाड़िलीजू सहसा प्रियतम के वक्षस्थल में लिपट गईं। जैसे-समीप में गजराज का उच्च गर्जन सुनकर कोई भीरुस्वभाव वाली रमणी भयभीत होकर अपने समीपवर्ती प्रियतम के अङ्गों में लिपट जाय, उसी प्रकार श्रीप्राणवल्लभ के वक्षस्थल में लिपट गईं ॥३॥

भाष्यम्—एवं श्रीरामवाक्येन प्रसन्ना जानकी बभूवेति वर्णयति श्रीति-असौ जनकात्मजा श्रीराघवेन्द्रस्य पत्युर्वदनेन्दुसुधां वाङ्माधुरीरूपां निपीय विस्मृता विस्मृष्टामान-कथा यया तथा भूता बभूव जाता, क्षीबेव मत्तेव मत्तत्वे सति पुरावृत्तं बिस्मरतीति प्रसिद्धम् ॥ सुधापानस्य फलं दर्शनमनुविशिनष्टि प्रक्षीणेति प्रकर्षेण क्षीणस्तद्विरहभा-

स्क जातः श्रीराघवेन्द्रविच्छेदसूर्योदितस्तापो यस्याः सा सुफुल्लं विकसितं चित्तकुमुदं यस्याः सेति श्रीरामसविनयवचनश्रवणान्निःशेषविरहनाशपूर्वकश्चितप्रसादोजातः इति ।१

अर्थ—इस प्रकार श्रीराजकुमार के मधुर वचनों से श्रीराजनन्दिनीजू प्रसन्न हो गईं इसी विषयको "श्रीराघवेन्द्र" इस श्लोक से वर्णन करते हैं-श्रीजनकराजनन्दिनी जू श्रीराघवेन्द्रकी मुखचन्द्र सुधाका पानकर अर्थात् वाक्यमाधुरी को सुनकर मान कथा भूल गईं। किस तरह-प्रमत्तके सदृश मतवालों को पूर्वकी बातें विस्मृत हो जाती है--यह प्रसिद्ध है। अमृतपान का फल श्रीप्रियतम का दर्शन को कहते हैं, प्रियतम के विश्लेषरूपी सूर्योदय के तापका अत्यन्त अभाव हो जाने के कारण श्रीप्रियाजू का चित्तरूपी कुमुद विकसित हो गया (भाव यह है कि विरहसूर्य के तापके सदृश दुःसह था वह ताप श्रीप्रियतम मुखचन्द्र का उदय होने से क्षीण हो गया तथा चित्तरूपी कुमुद भी विकसित होगया) श्रीराजनन्दनजू के वचनों के श्रवण से समस्त विरह नाश के साथ ही चित्त भी प्रफुल्लित हुआ ॥१॥

एवं प्रशान्तमानां प्रियां वीक्ष्याह कुर्विति-हे तरुणि ! सीते उपतापप्रपन्ने विरहज्वरग्रस्ते मयि रुषं न कुरुतां त्यजेत्यर्थः, अथ निज विजनं स्वीयक्रीडानिलयं भज प्राप्नुहीति कीदृशी सती तारहारेण शुद्धमुक्तामयस्रजः स्फुरन्ती दीप्यमा-

नेत्यर्थः। ततः किं तदाह स्तनेति–तव स्तनकनकनगौ कुच-स्वर्णशैलो मे तनुं अनुलक्षीकृत्य भावशाबल्यवत्ताम् स्वेद-रोमांचकंपादिकं विस्तारयतामित्यर्थः कीदृशीं तनुं शात-पातप्रतप्तां शातपातः सुखनिपातस्तेनप्रतप्तां (शर्म शात सुखानिचेत्यमरः) निबिड़ाश्लेषजमदनवह्निविदीप्तामित्यर्थः हारबन्धोऽयम्। अत्र मयीति ममेति च न्यूनपदं न दोषाय बन्धनिर्वाहे तात्पर्य्यात् ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीप्रियाजू को मानरहित देखकर पुनः श्री प्रियतमजू कहते हैं–हे श्रीलाड़लीजू ! विरह ज्वर ग्रस्त मुझ पर आप रोष न करें और शुद्ध मुक्तामय मालाओं को धारण कर कान्ति युक्त होकर (अर्थात् विरहावस्था में सभी भूषणादि वि-छिन्न होगये थे इसीलिये शृङ्गारयुक्त होकर श्रीरासकुञ्जमें चलने केलिए आग्रह करते हैं।) अपने क्रीड़ा निकुञ्ज में चलकर अपने यह स्वर्ण शैल सदृश वक्षोजयुगम से मेरे सन्तप्त शरीर में स्वेद रोमाञ्च कंप आदि भावों का विस्तार करें। आपके संश्लेष रूप सुख का नाश होने के कारण मेरा शरीर सन्तप्त था अर्थात् चिर-कालिक संश्लेष का अभाव होने से मदनवह्नि से संतप्त था यहां "मयि" तथा "मम" यह न्यूनपद दोष केलिये नहीं है किन्तु प्रवन्ध निर्वाह में तात्पर्य है ॥२॥

इत्थं कान्तोदितपीयूषपरितृप्तायास्तस्याः भ्रूनेत्रादि-

प्रसादसूचितं मानोपरामं ज्ञात्वा पादस्पर्शमिषेणालिङ्गितु-
कामः श्रीरामो बभूवेत्याह प्रणम्येति रामचन्द्रे श्रीदाशरथौ-
जनकात्मजायाः पादौ प्रणम्य शिरसा स्पृष्ट्वा तस्याः प्रसादनं
कुर्वति सति तद्वाटीप्राचीराद्बहिर्निबद्धो मत्तो गजराजः तथा
प्रांशूच्चं यथा स्यात्तथा जगर्ज बृंहितं तेने यथासौ जानकी
अस्य श्रीरामचन्द्रस्य वक्षस्तटीं सहसा भेजे तमालिङ्गित-
वतीत्यर्थः, अतिभीरुस्वभावा हि बालरमणी गजेन्द्रगर्जनवि-
त्रस्तान्तिकवर्तिनं पतिं शरणं जगाम, रामचन्द्र इवेत्युपमित
समासः तेन तत्स्पर्शस्यातिशैत्यं व्यज्यते ॥ ३ ॥

इति श्री व० सू० वि० श्रीजानकीगीतभाष्ये चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रकार प्रियतम की मधुर वाणी श्रवण से परितृप्त श्रीप्रियाजूकी भृकुटी नेत्रादि की प्रसन्नता से मान का उपराम जान कर श्रीप्रियतमजू ने चरण स्पर्श के मिस आलिङ्गन की कामना की। श्री चक्रवर्तीन्द्रनन्दन श्रीरघुनन्दनजू श्रीमिथिलेशराज-नन्दिनी जू के चरणों में प्रणाम कर प्रसन्न करने पर जैसे निकुञ्ज-प्रान्त के बाहर बँधा हुआ गजराज उच्चस्वर से गर्जन किया तो उससे भयभीत श्रीप्राणवल्लभाजू श्रीप्राणवल्लभजू के वक्षस्थल में सहसा लिपट गईं। अत्यन्त भीरु स्वभाववाली बालरमणी गजेन्द्र गर्जन से भयभीत हो-

कर अपने समीपवर्ती प्रियतम के शरण में गईं। 'रामचंद्र' इव यह "उपमित" समास है—इससे श्रीप्रियतम के संश्लेष से अत्यन्त शीतलता सूचित होती है ॥

इति श्रीसद्गुरुसदनीय पं० श्रीसीतारामशरण
कृत "रसबोधनी" भाषा टीकायां
चतुर्थ सर्गः ॥ ४ ॥

❀ अथ पञ्चमः सर्गः ❀

श्लोक-स्वागता सहचरीतति-

राराद्वीच्य तावथ विधूसरदेहौ ।

दम्पतीविहरणस्पृहयालू

मज्जनाय सरसीं प्रतिनिन्ये ॥ १

नवपङ्कजरागबद्धतीरं-

सितपीतादिमणीन्द्रविचित्रतीर्थम् ।

विकसत्तरुवल्लरी सुशोभं-

मुमुदाते तरुणौ सरो निरीक्ष्य ॥ २

अर्थ—मानलीला शमन होनेके पश्चात् धूलिसे धूसरित श्रीप्रियाप्रियतम के श्रीविग्रह को देखकर चारों ओर से सभी सखियां वहां आगयीं. पश्चात् दम्पती की जलक्रीड़ा करने की इच्छा जानकर सखियां मानससरोवर में मज्जन केलिए दोनों को लेगईं ॥१॥ सरोवरका किनारा नवीन पद्मराग मणियों से बंधा हुआ है तथा श्वेत पीत-हरित आदि श्रेष्ठ मणियों से चित्र विचित्र घाट बने हुए हैं तीर के वृक्ष तथा लतायें पल्लवित पुष्पित हैं इस प्रकार अत्यन्त सुशोभित सरोवरको देखकर दोनों श्रीलाड़िलीलालजू परम आनन्द को प्राप्त हुये ॥२॥

भाष्यम्— अथ विच्छेददुःखनाशानन्तरं सख्यस्तयोः सेवार्थमुपतस्थुरित्याह स्वागतेति सुष्ठु प्रसन्नमुखतयागता सहचरीततिः दम्पती श्रीजानकीरघुनाथौ विहरणस्पृहयालू चिक्रीडिषू वीक्ष्य सरसीं मानससरोवरं प्रति निन्ये नीतवती। किमर्थं मज्जनाय स्नानार्थं कीदृशौ विधूसरदेहौ विरहव्याकुलतया धरण्यां मूर्छनाद्रजःसंक्लिष्टगात्रावित्यर्थः, स्वागता छन्दः ॥ १ ॥

अर्थ—अब वियोग दुखनाश होने के पश्चात् सखियां श्रीप्रियाप्रियतमजू की सेवाके लिए उपस्थित हो गईं, इसविषय को कहते हैं-सभी सखियां प्रसन्नमुख से आगईं (अब तक दोनों के विश्लेष होने के कारण सेवा छूटगई थी-पुनः प्राप्त हुई अतएव प्रसन्नमुख कहा) दम्पती श्रीजनकराजनन्दिनी तथा श्रीअवधराजनन्दन को जलविहार की स्पृहा देखकर सखियां मानस सरोवर पर मज्जनके लिये ले चलीं। विरहसे व्याकुल होने के कारण पृथिवीपर मूर्छित होकर गिरे हैं, अतः दोनों के गात्र धूलि से धूसरित हैं, स्वागता छन्द है ॥१॥

सरसीं वर्णयति-नवेति तरुणौ तौ दम्पती सरः कासारं निरीक्ष्य मुमुदाते-आनन्दं प्रापतुः, कीदृशं नवैर्नित्यनूतनैः पंकजरागैः पद्मरागमणिखण्डैर्बद्धतीरं यस्य तत् सित-

पीतादिभिः स्फटिकनिकरादिभिः बहुविधैर्मणीन्द्रैश्चित्र-तीर्थं घट्टस्थलं यस्य तत् घट्टलग्ना सुबृहत्पट्टिका सुबहुवर्णलघुमणिखण्डैः सर्वतोभद्रारविन्दादिरचना मिथुनीभूत-पक्ष्यादि रचना च व्यज्यते। विकसंतीभिस्तरुवल्लरीभिः वृक्षलताभिः शोभा यस्य तत् यत् सरः परितो विदीप्तवह्नि-गरलभृतमिवासीदधुना परमानन्ददायि जातमिति भावः ॥२

अब सरोवर का वर्णन करते हैं-श्रीयुगलकिशोरकिशोरी दिव्यदम्पती सरोवर को देखकर आनन्दित हुये। नूतन पद्मराग मणि के खण्डों से सरोवर का तीर बंधा हुआ है, तथा स्वेत पीत स्फटिकमणि एवं अनेक प्रकार के श्रेष्ठमणियों से घाटके विभिन्न स्थलों की रचनाकी गई है। भाव यह है कि-घाट में लगी हुई विशाल स्फटिककी कई वेदिकायें बनी हुई हैं उनके ऊपर अनेक वर्णों के छोटे छोटे मणिखण्डों से सर्वतोभद्र कमल मिथुनपक्षी आदि की चित्र विचित्र रचनायें की गई हैं। पल्लवित पुष्पित वृक्षों के ऊपर विकसित लतायें सरोवरकी शोभा को बढ़ा रहा हैं। जो सरोवर पूर्व वियोग कालमें चारों ओर जलती हुई आग के सदृश तथा विषभरा हुआ प्रतीत होता था वही इस समय श्रीलाड़िलीलालजू को परमानन्द दे रहा है ॥२॥

❀ अड़ाणा रागे त्रिताली ताले ❀

मानससरसि सुगन्धसमीरे,
विकचकमलपरिवासितनीरे ॥ १ ॥
विहरति सीतारघुपतियुगलम् ॥ ध्रुव ॥
नोदितवारि विशोधितकेशम्,
चित्रितवसनविनिर्मितवेषम् ॥ २ ॥
रत्नखचितवरमण्डनशोभम्,
संगतमुकुरविलोकन लोभम् ॥३॥
परिहितमंजुलविचकिलमालम्,
हरिरनुगायति तिलकितभालम् ॥ ४ ॥

अर्थ—मानस सरोवर में श्रीप्रियाप्रियतमजू जलक्रीड़ा करते हैं विकसित कमलों के सौरभ से सरोवर का जल सुगन्धित है, तथा पुष्पों के पराग को लेकर सुगन्धित वायु चल रही है ॥ १ ॥ सखीगण दोनों सरकार के अङ्गों को कोमल वस्त्रों से पोछकर केशों को सुधार कर चित्रित वस्त्रों से सुन्दर वेश सजाये ॥ २ ॥ रत्नों के आभूषणों को धारण कराये, दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजू को एक सिंहासन पर विराजमान कर दर्पण दिखाये, परस्पर एक दूसरे की मुखछबि को देखने में लुब्ध हैं ॥ ३ ॥ विकसित कोमल पुष्पों की माला धारण कराने के पश्चात् भाल में तिलक लगाया गया ग्रन्थकार कहते हैं कि मैं इसी छबि को निरन्तर गान करता हूं ॥ ४ ॥

भाष्यम्—जलक्रीड़ां वर्णयति मानसेति सीता च रघुपतिश्च तयोर्युगलं तावित्यर्थः। मानससरसि विहरति, जलयंत्रादिभिः खेलति. कीदृशे सुगन्धसमीरो यस्य तस्मिन् विकचैः प्रफुल्लैः कमलैः परिवासितं सुरभिनीरं यस्य तस्मिन् ॥ १ ॥

अर्थ—अब जलक्रीड़ा वर्णन करते हैं—युगलकिशोर चितचोर श्रीप्रियाप्रियतमजू जलक्रीड़ा करते हैं, अर्थात् मानसरोवर में जलयंत्र आदि से विहार करते हैं। (आदि पद से कमल के पुष्पों को तोड़ कर परस्पर में गेन्द बना कर फेंकना, जल छिड़कना) जलपर नृत्य आदि महामाधुर्य्य लीलायें सूचित हैं। यथा— श्रीहनुमत्संहितायाम्—

ततः परम हर्षेण जानक्या सह राघवः। क्रीडयन् वारिमध्ये च यथा मत्तमतंगजः ॥ ८ ॥ सखीभिः सहितो भाति भगवान् सर्वकामदः। काचित्करेकरं धृत्वा ह्यगाधे प्रत्तिपन्मुदा ॥९॥ काचिच्च कैतवतया रामांगे निपतत्यहो। काचित्तीरात्प्रपतति जले काचिन्निमज्जति ॥१०॥ यंत्रिता वाहुयंत्रेण काचितकमललोचना। रामंकाचित् सिञ्चयन्ती करमुक्तेन वारिणा ॥ ११ ॥ परस्परं जलकणान् सिञ्चयन्ति वरांगणाः। काचिज्जलंकरपदैस्ताडयन्ति मुहुर्मुहुः ॥ १२ ॥ इत्यादि अध्याय ५ वां

इन श्लोकों की व्याख्या अनन्त श्रीस्वामी युगलानन्यशरणजी महाराजने "श्रीयुगलविनोद विलास" नामक ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन किया है यथाः—

जुगल विचित्र विहार किधौं कल हंस हंसनी।
किधौं मत्त मातंग कलित करनी प्रसंसिनी॥
किधौं कामिनी काम किधौं यामिनी चंद्वर।
किधौं सजल घन दाम नीर अन्तर विनोद कर॥२१॥
किधौं अमल अनुराग रूप रस भूप सुतन धरि।
क्रीड़त कुंवरकिसोरकिसोरी व्याज साज करि॥
सखिन सहित घनश्याम राम अभिराम नवल तन।
रसिक मनोरथ मधुर कामदायक प्रसन्न मन॥२२॥
नवल नाजनी नारि कंज कर गहि गरूर गुनि।
प्रीतम परम रसज्ञ रचत कौतुक अनेक पुनि॥
अति अगाध जल बीच डारि हरषत काहू पिय।
तिमि काचित वर वाम पकरि विन वसन करतहिय॥२३
रसनिधि निज वर बाहु जंग यंत्रित ललना करि।
मगन होत छबि जोत परम प्रगटत सुधीर धरि॥
कैतब कुशल अजूब नायिका एक कंज दृग।
निपतित प्रीतम अङ्ग अमल मानो मनोज मृग॥२४
किधौं सचीपति सुमति नवल नग लषि समान घन।
गिरत छटा छबि सहित रहित आमर्ष हर्ष मन॥

किधौं सजीली स्वर्णलता सुर द्रुम सनेह तजि।
अमल तमाल अनूप रंग रमनीय आप भजि ॥२५॥
काचित कलानिकेत वाम कूदत स्वतंत्र जल।
गहत लाल कर कंज जाय औचक असंक कल॥
प्रीतम प्रेम प्रकासि परम पंडिता रहस मधि।
ललिन समेत अथाह नीर मज्जति विचित्रविधि ॥२५
ललित लड़ैती लाल सखिन सम्पन्न परस्पर।
नवल नीर कन कंज करन सींचत विचित्र तर॥
कोमल कर पद कंज मंजु आघात सरस सुचि।
करहिं केलि कमनीय रमन रमनी समेत रुचि ॥२७॥
महा मधुर धुनि छाय रही चहुं ओर विलच्छन।
सपिन सहित सिय श्याम नवल रस समर अनुच्छन॥
कोउ सहचरी सनेह सनी लषि ललित उरस्थल।
मृदु तर सुपद सरोज हनत क्रीड़ा रस बिह्वल ॥ २८॥
काचित सपी सलोन ललन दै अंकमाल अति।
समुझि विपुल भय नीर मध्य मज्जन हित डरपति ॥
अति चातुरी रचाय एक आली अलबेली।
गहि प्रीतम प्रिय अंग गई बन बीच अकेली ॥२६॥

काचित सखी सरोजमुखी अति सवल धार मधि ।
पड़ी वड़ी हैरान हीय व्याकुल न रंच सुधि ॥
तरल तरंगन संग वसन विलगान न जानति ।
वहुरि होस हिय लाय विपुल व्रीड़ा मन मानति ॥३०

सरम सकोच सजाय निकट प्रीतम न जात तिय ।
कोउ अलि कर गहि वाहि विहंसि सनमुख कीन्हीपिय॥
तव व्रीड़ा संपन्न वाम मज्जति अंतर जल ।
निरषि नवल निज नैन नाह दीन्हीं सुवसन भल ॥३१

रसिक सिरोमनि श्याम राम अभिराम नेह निधि ।
जुगल करज दै चिवुक बीच चुम्बन करि वहु विधि ।
कलित कपोल अमोल वाम निज प्रिय संजुत करि ।
चाखत सुधा समूह अधर रस अति उमंग भरि ॥३२॥

जिमि चञ्चलपन छोड़ि चतुर चञ्चरी कंज रस ।
पीवत परम प्रमोद पाय घूमत सनेह बस ॥
यहि विधि विपुल विहार सहचरनि संग रंग रचि ।
करि सनेह रस लीन मीन मन हरन स्वाद सुचि ॥३३

जल क्रीड़ा कमनीय निकर परिकर विशेष सजि ।
भीने नवल निचोल सरस सिर सह आनन भजि ॥

हेम मनोहर बरन छोम वर वसन सुतन छबि ।
दंपति नेह नवीन परम प्रतिभा भासति कबि ॥३४॥

परिहेलि प्रभु मानसललीय ललीलाल कौतूहल रची ।
जलकेलि क्रीड़ा क्रीड़ जहं अहलाद क्रीड़ा कलमची ॥ १ ॥
जलजात कर उच्छरित जल जलजात फेंकहिं अलिलची ।
तेहिं संग भ्रमर उड़ाहिं गुञ्जत देखि कवि शारद नची ॥ २ ॥
जनु पूर शशि टूटहिं विथकि अहिवाल तेहि रस लूटहीं ।
जनु स्वरन सम्पुट वेष्टिरस अलि अलि चपरि लै जूटहीं ॥ ३ ॥
प्रभु लेत पुनि फेंकत लगत जनु अमिय घट भरि फूटहिं ।
जिमि रामचरण हवाइ सीयपुर काम रति कर छूटहीं ॥ ४ ॥
यहि विधि जलकेलि हेलि खेलत पिय प्यारी ॥

उमगत आनन्दमाल हंसत धरत ललियलाल, अधर अधर परसत मुख दरसत सुषमारी ॥ १ ॥ मिलित लाल अलकवंक वेसरि अरुझेउ लटंक अलिकच कुण्डल बुलाक अरुझेउ उपमारी ॥ २ ॥ जनु जुग विधुचलल कुरङ्ग, गुरु द्वौ रवि अरि अनङ्ग अहि रजुकसि वीच वैर सब तजि सुख मारी ॥ ३ ॥ कोउ सखि निरुआरति करताल हंसि वजावति बहु व्यंग राग गावति मन भावति नहिं न्यारी ॥ ४ ॥ करते करजोरि सकल निरतत जल उपर चपल, चरण चलत छुअत छटक नूपुर रवकारी ॥ ५ ॥ रत्नालंकृत विचित्र जगमग जल विम्ब पवित्र जनु घन दिवि तड़ित चिपुल दमकति दुतिवारी । छुम छुम थेइ थेइ तरङ्ग गावत पिय संग संग चलत लजत गज अनंग वाजत करतारी ॥ ६ ॥ अद्भुत राहस अनूप देखहिं कोई सखी सरूप, श्रीरामचरण देखहिं किमि नयन अंध वारी ॥ ७ ॥

शीतल मन्द सुगन्ध वायु चल रही है तथा कमल समूह विकसित हैं जिनके परागों से जल सुवासित है ॥ १ ॥

स्नानोत्तरमङ्गमार्जनमाह—नोदितेति नोदितं शुचीनां वस्त्रैरपनीतं वारि यस्य तदिति तद्युगलविशेषणम्। विशोधिताः शुष्कशुचीनाङ्गवस्त्रै श्शुष्कतां नीताः केशाः यस्य तदिति वेणीगुम्फनजूटबन्धनसुगन्धभावनोपलक्षणमेतत् । वेशरचनामाह चित्रेति चित्रितैर्वसनैर्विनिर्मितोवेशो यस्य तदिति मकरपत्राद्युपलक्षणमेतत् । अथवा चित्रितं च तद्वसनैरन्तरीयोत्तरीयोष्णीषशाटीकञ्चुक्यादिभिर्विनिर्मितो वेशो यस्य तच्चेति व्याख्येयम्, एतच्चपृथक् स्थित्वेति ज्ञेयम् ॥ २ ॥

स्नान के पश्चात् अङ्ग मार्जन कहते हैं:—स्वच्छ वस्त्रों से अङ्ग पोछकर तथा श्रीयुगलसरकार के केशों को भी सूखे वस्त्रों से पोछ कर फूलेल लगाकर श्रीप्रियाजू की वेणी गूँथी गयी तथा प्रियतम की जुल्फें भवन के अनुसार बनाई गईं, वेश रचना कहते हैं—दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजू को पृथक् पृथक् शृङ्गार कुञ्ज में ले जाकर सखियों ने समयोचित चित्र विचित्र रंग के वस्त्रों से शृङ्गार किया तथा मकरी पत्र आदि की रचना भी सूचित है ॥ २ ॥

अथालंकारधारणमाह रत्नेति—रत्नैर्हीरकादिभिः खचितानि वरान्यमूल्यानि यानि मण्डनान्यवतंसनासिका-भूषणहार-केयूर-मुद्रिका-किंकिणी-नूपुरादीनि तैः शोभा यस्य तत्, एवं स्नानादिना तौ प्रसाध्य मुहुर्निरीक्ष्य चाथ दूती युस्मत्सुन्दरतासंयोजनायागता तां प्रौढ़ां पश्यतमिति मिषेण परस्परमाधुर्य्यविगाहनाय पुरतोदर्पणस्य विलोकने लोभो-येन तत् ॥ ३ ॥

अलंकार धारण कहते हैं—बहुमूल्य हीरों से जटित विविध मणियों के चन्द्रिका किरीट, नासामणि, हार, केयूर, मुद्रिका, किंकिणी, नूपुर आदि आभूषण धारण कराये गये, जिससे दिव्यदम्पती की अलौकिक शोभा बढ़ी। इस प्रकार दोनों सरकार के मज्जन के पश्चात् शृङ्गार करके छबि अवलो-कन कर सखियाँ बलिबलि गईं पुनः सखियां दोनों के एकत्र संयोजन के लिये आगईं। परस्पर माधुर्य्य के अवगाहन के लिये सामने दर्पण रक्खा गया परस्पर की छवि देखकर एक दूसरे की छवि पर बलिहार जा रहे हैं तथा दर्पण को देखने में लुब्ध हैं ॥ ३ ॥

अथ पुष्पधारणमाह-परीति-परिहिता मञ्जुला शिल्प योगेन कमनीया विचकिलमाला यस्य तत्, तिलकितभालं रत्नतिलकविशिष्टललाटम्, ईदृशं युगलं हरिराचार्य्योऽनुगा-यति निरन्तरं कीर्तयति, तस्मिन् स्वाधेशोध्वनितः ॥ ४ ॥

अब पुष्प धारण कहते हैं;—अत्यन्त कारीगरी से विकसित कोमल पुष्पों की बनायी हुई माला श्रीयुगलकिशोर को धारण करायी गयी । भाल में मनोहर तिलक की रचना की गई इस प्रकार शृङ्गार से सुसज्जित चितचोर श्रीयुगलकिशोर की रूप माधुरी को श्रीहरिआचार्य निरन्तर गान करते हैं। इस छवि में अपना आवेश सूचित किये ॥ ४ ॥

श्लोक—सच्चन्द्रकान्तस्फुरिताजिरान्तरे
कुञ्जे विचित्रैः स्वनिते पतत्रिभिः ॥
सख्योऽथतीर्थादुपनीतनाथाः
समाययुर्मन्थरपादपाताः ॥ १ ॥
सहोपविष्टौ मृदुलाच्छसंस्तरे
विदीप्तजाम्बूनद पीठके प्रियौ ॥
तौ भोजयामासुरमन्दसौरभैः
प्रपानकैर्मौक्तिकमोदकैश्च ताः ॥२॥

अर्थः—स्नान-शृङ्गार सम्पादन के पश्चात् सखियाँ श्रीप्रियाप्रियतमजू को साथ लेकर मन्द मन्द चाल से रासकुञ्ज में आईं, कुञ्ज का आंगण अत्यन्त शोभा वर्द्धक है, चन्द्रकान्त मणियों से प्रकाशमान अथवा स्वच्छ चन्द्रमा की कान्ति से शोभायमान है। वह कुञ्ज सर्बत्र चित्रविचित्र पक्षियों के कलरव से सुशोभित है ॥ १ ॥ देदीप्यमान स्वर्ण की चौकी पर स्वच्छ

सुकोमल बिछौने बिछे हैं उन पर दोनों प्रियाप्रियतमजू को एक साथ बिठलाकर सखियों ने अत्यन्त सुगन्धित मोतीचूर के लड्डू तथा दिव्य आसव आदि पदार्थों से भोजन कराया ॥२॥

श्लोक—प्रक्षाल्यपाणी मुखपंकजे पुनः—
सख्यर्पितैरम्बुभिरीश्वरौ मुदा ॥
ताम्बूलवीटी परिरञ्जिताननौ
पीठे परस्मिन् बभतुः सुवीजितौ ॥३॥
सख्यः समशितफेलाः
प्रमुदितवेलाः तिरस्कृताप्सरसः ॥
आत्मप्रियनवशोभा-
लोकनलोभाः कृतिं विदधुः ॥ ४ ॥

श्रीप्राणसञ्जीवनीजू तथा श्रीप्राणसञ्जीवनजू सखियों के द्वारा अर्पित जल से मुखकमल तथा हस्तकमल प्रक्षालन कर ताम्बूल (पान) की वीड़ी से मुख को परिरंजित (रंग) करके पुनः दूसरे सिंहासन पर विराजमान होकर छत्र चामरों से सुसेवित होकर परम शोभा को प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ अपने रूप गुणों से अप्सराओं को तिरस्कार करनेवाली सखियों ने श्रीप्रियाप्रियतमजू की शेष प्रसादी सेवन कर परमानन्दमय समय जानकर "रास समय" की आरती की, और श्रीप्राणवल्लभा श्रीप्राणवल्लभजू की छवि को देखने में सभी लुब्ध हो गईं ॥४॥

भाष्यम् :—एवं स्नानादिभिस्तौरुचिरौ कृत्वा कुञ्जे भोजयितुमानिन्युरित्याह सचन्द्रेति–अथ वेशरचनानन्तरं सख्यस्तीर्थात स्नानघट्टात् उपनीतनाथाः सत्यः नाथौ गृहीत्वेत्यर्थः, कुञ्जे समाययुरागताः कीदृश्यः मन्थरः पादपातो यासां ताः सरस्तटवर्तिलतादिसौन्दर्य्यवीक्षणेन विलम्वप्राप्ते मान्थर्य्यम्, कीदृशे कुञ्जे सद्भिश्चन्द्रकान्तैः स्फुरितं दीपितमजिरान्तरं प्राङ्गणमध्यं यस्य तस्मिन्, विचित्रैः पतत्रिभिः पक्षिभिः स्वनिते कूजिते–इति तेषां क्रीडोद्दीपकं ध्वनितम् ॥ १ ॥

अर्थ :—इस प्रकार स्नान शृङ्गार आदि से सुशोभित कर दोनों–श्रीप्रियाप्रीयतमजू को सखियाँ भोजन के लिये कुञ्ज में लाईं, इसी विषय को कहते हैं:—वेश रचना के पश्चात् सहचरीवृन्द स्नानस्थल से दोनों श्रीप्राणवल्लभा तथा श्रीप्राणवल्लभजू को मन्द मन्द चाल से कुञ्जमें लाये। सखियां सरोवर के तटवर्ती लताओं के सौन्दर्य का अवलोकन करती हुई रुक रुक कर चल रहीं हैं अतः "मन्थर गति" से चलना कहा गया। भोजन कुञ्ज का मध्य प्राङ्गण विशद चन्द्रकान्त मणियों से प्रकाशमान है। तथा बिचित्र पक्षियों के कलरव से शब्दायमान है–इससे इन सब सामग्रियों को क्रीड़ाका उद्दीपक सूचित किये ॥ १ ॥

सहेतिः—ताः सख्यस्तौप्रियौ दम्पती भोजयामासुः कीदृशौ विदीप्तजाम्बूनदपीठके विविधरत्नजटितकनकचतुष्क्यां सहोपविष्टौ मिलित्वा स्थितावित्यर्थः। कीदृशे-इत्याह मृदुलेति कोमलनिर्मलप्रावरणमण्डिते कैः भोजयामासुरित्याह प्रपानकैरिति मरीचकर्पूरादिसुभागयोजनात् प्रकर्षः मौक्तिकैश्च लड्डूकभेदैः ॥ २ ॥ भुक्त्वा मुखधावनादिकं चक्रतुरित्याहः—प्रक्षाल्येति ईश्वरौ प्राणनाथौ तौ दम्पती सख्यर्पितैरम्बुभिः पाणीकरौ प्रक्षाल्य मुखपंकजे च प्रक्षाल्य परस्मिन् पीठे भोजनपीठादन्यस्मिन् पीठे स्थित्वा बभतुः दीप्तिं प्रापतुः कीदृशौ सन्तावित्याह ताम्बूलवीटीति ॥३॥

अर्थ—सभी सखियों ने प्रिय दम्पती को भोजन कराये। विविध प्रकार के रत्नों से जटित अत्यन्त प्रकाशयुक्त स्वच्छ कोमल आस्तरण (बिछावन) से सुशोभित चौकी पर दोनों श्रीयुगलकिशोर एक साथ मिल कर विराजमान हैं। किन पदार्थों से भोजन कराये गये, उस पर कहते हैं कि:—मरीच-कपूर-केसर आदि को समभाग मिलाने से उत्कृष्ट रसायनों से तथा अनेक भेद के मोतीचूर के मोदकों से भोजन कराये गये। दोनों श्रीप्राणसञ्जीवनी प्राणसञ्जीवनजू सखियों के द्वारा अर्पित जल से करकमल तथा मुखकमल को प्रचालन कर भोजनचौकी से दूसरे पीठ (सिंहासन) पर विराजमान होकर ताम्बूल

वीटिका (पान बीड़ा) को चबाते हुये परम शोभा को प्राप्त हुये ॥ ३ ॥

एवं तौ भोजयित्वा रत्नचतुष्कयां विराजन्तौ च कृत्वा सख्यः प्रसादं बुभुजिरे-इत्याह सख्य इति-सख्यश्चन्द्रकलाद्याः कृतिं विदधुरारार्तिकं चक्रुरित्यर्थः कीदृश्यो भूत्वेत्याह समिति सम्यगत्यादरेणाशिता फेला भुक्तशेषो याभिस्ताः प्रमुदिता वेला यासां ताः सखीनां मोदोऽत्रसमये-उपचरितः समयोऽप्यसौ सुखात्मा जात इत्याशयः, तिरस्कृता अप्सरसः उर्वश्याद्याः याभिस्ताः आत्मप्रिययोः श्रीसीतारामयोः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीप्रियाप्रीतमजू को भोजनोत्तर रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान कराने के पश्चात् सखियों ने युगल प्रसाद सेवन किया, इसी विषय को "सख्यः" इस श्लोक से कहते हैं:—अपने रूप गुणोंसे उर्वशी आदि अप्सराओं को भी तिरस्कार करनेवाली श्रीचन्द्रकला, श्रीचारुशीला, श्रीप्रसादा श्रीसुभगा, श्रीचन्द्रा, श्रीहेमा, श्रीक्षेमा, श्रीविमला, श्रीवरारोहा आदि सखी मण्डली अत्यन्त आदर पूर्वक श्रीलाड़िलीलालजू के शेष प्रसादी सेवन कर आरती' आदि कृत्य करने लगीं। सभी सखियों के लिये यह समय परम सुखमय आगया है अतः आत्मप्रिय श्रीरासवल्लभाजू तथा श्रीजानकीवल्लभजूकी रूपमाधुरी में सभी आसक्त हैं॥

❀ विहाग रागे त्रिताली ताले ❀

जनकसुतासहितं रघुराजम्,
अधिसिंहासनमतिसुखभाजम् ॥१॥
कापि नीराजयति परा,
मणिदीपावलि ललितकरा ॥ध्रु०॥
काचन मृदु वादयति मृदङ्गम्,
झल्लरिकामपि कापिसुरङ्गम् ॥ २ ॥
उदयति भूषणनिकरमरीचि,-
लसति सखीषु च कौतुकवीची ॥३॥
हरिवचनं सरसीकृतशमम्,
कुरुत बुधा हृदये दितकामम् ॥ ४॥

अर्थः—श्रीजनकराजकिशोरीजू के साथ श्रीकोशलराजकिशोरजू सुख पूर्वक सिंहासन पर विराजमान हैं॥ १ ॥ कोई सखी ललित करकमलों में मणि की दीपावलि को लेकर आरती कर रही हैं ॥ ध्रु० ॥ कोई सखी मृदङ्ग बजाती हैं और कोई स्वर मिलाकर झाँझ बजाती हैं ॥ २ ॥ श्रीयुगलकिशोर चितचोर के भूषणसमूहों से प्रकाश उदय हो रहा है, जिस से सखियों में आनन्द की लहरें उठरहीं हैं ॥ ३ ॥ श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि हे भक्तगण! अन्य कामनाओं को हटाने वाला श्रीप्राणवल्लभ के मनोरञ्जक मेरे वचन को अपने २ हृदय में धारण करें।

भाष्यम्ः—आरार्तिकोत्सवं वर्णयति जनकसुतेति-कापि सखी रघुराजं नीराजयति। कीदृशं जनकसुतासहितं युक्तम्, अधिसिंहासनमिति विभक्त्यर्थेऽप्यव्ययीभावः। सिंहासने स्थितमित्यर्थः। कीदृशीत्याह मणिदीपेति ॥ १ ॥ तदानीं काचन सखी मृदंगं वादयति मृदु यथा स्यात्तथा, झल्लरिकामपि कापि वादयति सुरंगं सुरसं यथा स्यात्तथा ॥२

अर्थः—अब आरती उत्सव का वर्णन करते है, "जनकसुतेति" इस पद से:—कोई सखी कोमल करों में मणियों के दीप समूह को लेकर श्रीजनकराजनन्दिनी जू के सहित श्रीरघुनन्दजू की आरती करती हैं, "अधिसिंहासनम्" यहां पर अव्ययीभाव समास विभक्त्यर्थ में हुआ है सिंहासन पर विराजमान हैं यह अर्थ होता है ॥ १ ॥ उस समय कोई सखी अति मधुरस्वर से मृदङ्ग बजाती हैं, कोई सखी झाँझ बजाती हैं जिसमें सुरसहो २

दीपावलिप्रभया भूषणनिकरस्य मरीचिः कान्तिरुदयति उद्गच्छति। सखीषु पश्यन्तीषु च कौतुकवीची प्रमोदलहरी लसति ॥ ३ ॥ कविराह हरिरिति हे बुधाः हरिवचनं हृदयं कुरुत यूयं कीदृशं सरसीकृतः सानुरागतां प्रापितो रामो येन तत् श्रीरामो यस्य श्रोतेत्यर्थः। दितः खण्डितः कामोऽन्याभिलाषो येन तत् ॥ ४ ॥

दीपावली की प्रभा से श्रीयुगलकिशोर के भूषणसमूह की कान्ति चारो ओर फैलरही है, जिससे दर्शन करनेवाली सखी मण्डली में प्रमोद की लहरें उठतीं हैं ॥ ३ ॥ ग्रन्थकार कहते हैं हे बुधगण ? "हरि" (आचार्य) के वचन को हृदय में धारण करें, श्रीप्रियतम भी जिसके अनुरागी हैं अर्थात् इसके श्रोता स्वयं श्रीरसिकशिरोमणिजू हैं, यह वचन श्रोताओं की अन्य अभिलाषाओं को नाश करने वाला है ॥ ४ ॥

श्लोक-अथोपतस्थे जनकात्मजा विभुं,
रासाभिलाषस्फुरदन्तरं पतिम् ।
स्मितावलोकाहृतमुज्ज्वलस्मितं-
सुमण्डिता केलिकलासु पण्डिता ॥१॥
सख्यस्तु तावद्वररासमण्डली-
मुपागताश्चन्द्रकलादयोऽखिलाः ।
वादित्रगीतादिभिरात्मनाथयोः
प्रवर्तयामासुरमूः सुनर्तनम् ॥ २ ॥

अर्थ:-इसके पश्चात् कमनीय वस्त्र भूषणों से सुशोभित, केलि-कला में परमपण्डिता श्रीप्राणवल्लभाजू ने श्रीप्राणवल्लभजू को अनेक रूप धारण करके रास करने के लिये संकेत किया,

जिससे श्रीप्रियतमजू के हृदय में महारास की अभिलाषा जागृत हो उठी, श्रीप्रियाजू के मन्द हास युक्त कटाक्ष से आदर पाने वाले श्रीप्रियतमजू भी महारास करने के लिये उद्यत हो गये ।१

श्रीचन्द्रकला श्रीचारुशीला आदि सभी सहचरी मण्डली श्रेष्ठ रासमण्डलों में आगईं. और दोनों श्रीरासविहारिणीबिहारीजू को गान वाद्यों के द्वारा रासकुञ्ज में लाकर सुन्दर नृत्य कराने लगीं ॥२॥

भाष्यम् :—एवं प्रियेण सह स्नानप्रसाधनभोजननीराजनैः प्रहृष्टमनाः श्रीजानकी स्मितवीक्षया रासाभिलाषं व्यानंजेत्याह :—अथेति जनकात्मजा पतिं श्रीराममुपतस्थे, रासरसिकत्वेन तुष्टावेत्यर्थः, कीदृशं विभुं युगपत् सर्वकान्तासन्निधानात् व्यापकम्-इत्यर्थः। स्पष्टमन्यत्, इहोभयोः स्मितमिदम् परस्परनृत्यादिप्रावीण्यकृतविजयव्यंजनाय बोध्यम् ॥ १ ॥

अर्थ :—इस प्रकार श्रीप्रियतमजू के साथ स्नान शृङ्गार भोजन और आरती से अत्यन्त प्रसन्नमन होकर श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजू ने मन्द हास युक्त कटाक्ष के द्वारा श्रीप्रियतमजू से रास की अभिलाषा प्रकट की, इसी विषय को इस श्लोक से कहते हैं :—श्रीजनकनन्दिनीजू ने श्रीप्राणवल्लभजू से प्रार्थना की अर्थात् रासरसिकत्व आदि विशेषणों से स्तुति की। कैसे प्रिय

तम हैं ? विभु हैं :—अर्थात् एक काल में ही सभी प्रेयसियों के साथ रमण करते हैं-अतः व्यापक हैं। शेष भावमूल में ही स्पष्ट हैं, यहां दोनों श्रीप्रियाप्रीयतमजू का मन्द हास अपनी २ नृत्य गान कलाओं की प्रवीणता के द्वारा परस्पर विजय व्यङ्ग्य के लिये जानना चाहिये। अर्थात्—श्रीप्रियाजू अपनी नृत्य गान कलाओं से श्रीप्रियतमजू के प्रति अपनी विजय सूचित कर रही हैं, और श्रीप्रियतमजू अपने नृत्य गान कलाओं से श्रीप्यारीजू के प्रति अपनी विजय सूचित कर रहे हैं॥ १॥

एवं द्वयोः रासाभिलाषमिंगितादभिज्ञाय तत्सामग्रीं-सख्यः संपादयामासुरित्याह :—सख्यास्त्विति-तावदेतन्मध्ये अमूः चन्द्रकलादयोऽखिलाः सर्वाः सर्वगुणपूर्णाः वा सख्यो वरां श्रेष्ठां रासमण्डलीं स्थलीमुपागताः सत्यो वादित्रादि-भिरात्मनाथयोर्जानकीरघुपत्योः सुनर्तनं समीचीनं नाट्यं प्रवर्तयामासुः रासस्थल्यां तौ आनिन्युरित्यर्थः॥ २॥

इस प्रकार दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजू की अभिलाषाओं को संकेत के द्वारा जानकर सहचरीगण ने समयोचित सामग्रियों का सम्पादन किये। इसी विषयको इस श्लोक से कहते हैं :-इसी बीच में सर्व गुण सम्पन्न श्रीचन्द्रकला श्रीचारुशीला आदि सभी सहचरी वृन्दने दोनों श्रीप्रियप्रीतमजूको श्रेष्ठरासस्थली में लाकर गान वाद्यों के द्वारा श्रीप्राणसञ्जीवनीजू श्रीप्राणसञ्जीवनजू को समीचीन नृत्यमें प्रवृत्त कराये। अर्थात् रासस्थली में दोनों को प्रवेश कराये।

केदाररागे यात्रा ताले

विशदराकेशकरनिकरनिर्मलविपिनकान्ति-
सन्तानरञ्जितकनकभास्वरे ।
विकसदरविन्दमधुगन्धमंजुलमलय-
वातपरिपातसंशमितविरहज्वरे ॥१॥
नटति रघुनायको रासरसचत्वरे ॥ध्रु०॥
सुषिरततघनमिलितवरमुरजरवमये
ललितमंजीरवरसिंजित मनोहरे ।
तत्तथैतत्तथैनिनदशोभितवदन-
चन्द्रतरुणीनिचयकरविधुतिमोदरे ॥२॥
वामदक्षिणवलितयुवतियुगपरिकलित-
बाहुरघुनाथतनुवृन्दसुन्दरतरे ।
विमलकलगानहतमानसुरनर्तकी-
निवहवर्णितनिगमगीतनर्तनभरे ॥३॥
कुन्दमन्दारमकरन्दसौरभचपल-
भृङ्गनिकुरम्बझङ्कारजनितस्मरे ।

श्रीहरिचकोरपतिहृदयहरकौमुदी-
सान्द्रतरजानकीराममुखविधुवरे ॥४॥

अर्थ :—रसिकशिरोमणि श्रीचक्रवर्तीन्द्रनन्दनजू रास चौक में नृत्य करते हैं। स्वच्छ पूर्णचन्द्र की किरणों से विशद रासकुञ्ज जगमगा रहाहै. कुञ्जको परमशोभा सर्वत्र फैलती हुई रास मंडलके स्वर्ण वेदिकाओंपर पड़ती है जिससे रासकुञ्ज परम प्रकाश युक्त हो रहा है। विकसित कमलों के मधुर पराग से सुगन्धित मलय वायु के संयोग से नायक नायिकाओं का विरह ज्वर शमन हो जाता है ॥ १ ॥ सुषिर (वंशी) तत (वीणा) घन (कांस्य तालादि झांझ आदि) वाद्य समूह के मधुर स्वर से युक्त श्रेष्ठ मृदङ्गों के शब्द से रास चौक शब्दायमान हो रहा है ॥ नायिकाओं के श्रेष्ठ बहुमूल्य नूपुरों की ध्वनि मन को हर लेती है। 'तत्तथै तत्तथै' इस प्रकार के शब्द नृत्य के समय सब के श्रीविग्रह से निकल रहे हैं इन शब्दों से शोभित चन्द्रमुखी तरुणी वृन्द के कर कम्पन (नृत्य की मुद्राओं से भावों को बताकर तेजी से हाथों को चलाने) से परम मोद प्राप्त हो रहा है॥ २ ॥

श्रीप्रियतमजू अनेक रूप धारण करके रास कर रहे हैं, उसी का वर्णन करते हैं :—श्रीप्राणवल्लभजू के प्रत्येक विग्रह के वाम तथा दक्षिण भाग में एक २ नायिका प्रियतम के हाथ से हाथ मिलाकर नृत्य कररही हैं, इस प्रकार मण्डलाकार नायिकाओंसे अलंकृत श्रीप्रियतमजूके विग्रहसमूह अत्यन्तशोभायमान हैं, परिकरों की विमल और सुरीली गान सुनने से सुरनर्तकी-उर्वशी

मेनका आदि का मन हरण होगया है तथा वे सब इन परिकरों के नृत्य गान की प्रशंसा कर रही हैं, वेद प्रमाणित गीत तथा नृत्य हो रहे हैं ॥ ३ ॥ कुन्द, मन्दार आदि पुष्पों के मकरन्द के सौरभ को पान करने से चञ्चलभ्रमर समूह गुञ्जार कर रहे हैं, वे गुञ्जार नायक तथा नायिकाओं के हृदयमें रसोद्दीपन कर रहे हैं। श्रीहरिआचार्य चकोर पति हैं, इनके हृदय को हरने वाली श्रीप्रियाप्रियतमजू की अलौकिक मुखचन्द्र की रसमयी चन्द्रिका रास मण्डल में छिटक रही है, इससे रास प्राङ्गण सुशोभित है ॥ ४ ॥

भाष्यम् :—रासनृत्यं वर्णयति विशदेति :—

रघुनायकः श्रीरामः रासरसचत्वरे नटति-रासानन्दाधारे प्राङ्गणे नृत्यति इत्यर्थः, कुञ्जभवनान्तर्वर्ति सुविस्तीर्णमण्डलमिह चत्वरशब्दार्थः ॥ तत्र मुख्येन रूपेण श्रीसीतया सह सीतांशभूताभिरपराभिस्तु प्रकाशान्तरै रिति बोध्यम् ॥ तत्तथै तत्तथै इत्याद्युत्तरग्रन्थात् चत्वरविशेषणमुखेन नाट्यं वर्णयति विशदेत्यादिना-बिशदः स्वच्छो यो राकेशस्य पूर्णचन्द्रस्य करनिकरः किरणसमूहस्तेन निर्मलमुज्वलं यद्दिपिनं तस्य यः कान्तिसन्तानश्छविविस्तारस्तेन रंजितानि यानि कनकानि मण्डललग्नानि, तत्प्रान्तगतानि वा, तैर्भास्वरे दीप्ते, वासन्तिक पल्लवोच्छलितकान्तिकस्य वनस्य

१४४ पेज की अन्तिम पंक्ति 'वनस्य' के पश्चात् इतनी पंक्तियां भाष्य की छुट गई हैं कृपया जोड़कर पढ़लें ।

पुनश्चन्द्रिकाभिः राजताम्बुतुल्याभिः चालितस्याति चाक-चिक्यै रासस्थल्यां महती दीप्तिरिति वर्तुलोऽर्थः ।

विकसन्ति यान्यरविन्दानि निशाविकाशीनि तेषां मधुग-न्धैर्मञ्जुलो यो मलयवातस्तस्य परिपातेन संयोगेन संशमितो विरहज्वरो येन तस्मिन्, मन्दसुगन्धशीतलपवन सेवित इत्यर्थः इह नृत्याङ्गभूतानां वर्णनेन नृत्यवर्णनं बोध्यम्, तेन विना तस्यापोषात् ॥ १ ॥

अर्थ—ग्रन्थकार अब महारास नृत्य का वर्णन करते हैं 'विशद' इस पदसे-श्रीचक्रवर्तीन्द्रनन्दन रघुनन्दन राम आनन्द के आधार भूत रासचौक में नृत्य करते हैं। रासकुञ्ज के अन्तर्वर्ति सुविस्तार मण्डल को यहां "चत्वर" शब्द से कहा जाता है, अर्थात्-रासमण्डल में नृत्य कर रहे हैं। श्रीप्रियाजू की अंशभूता अपरं सभी नायिकाओं के साथ रूपान्तर से तथा मुख्य रूपसे श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजू के साथ रास कर रहे हैं ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि (नृत्यके समयमें सभी नायिकाओं के शरीर से 'तत्तथै तत्तथै' ऐसे मनोहर शब्द निकल रहे हैं ऐसा आगे कहेंगे, अतः अनेक नायिकाओं के साथ रास स्पष्ट है)।

यहां "चत्वर" के विशेषणों के द्वारा नृत्य का वर्णन करते हैं "बिशद' इस पदसे-स्वच्छ पूर्णचन्द्र के किरण समूहों से रासकुञ्ज निर्मल है, उसकी कान्ति बहुत दूर तक फैली है वह कान्ति कुञ्ज के प्रान्त में लगी हुई स्वर्णभित्तिओं पर अथवा रास मण्डल में लगी हुई स्वर्ण वेदिकाओं पर पड़ती है उससे देदीप्यमान रासप्राङ्गण में श्रीप्रियतम नृत्यकर रहे हैं। भाव यह है कि वसन्त कालिक नूतन एवं सुकोमल पल्लवोंसे स्वतः कुञ्ज सुशोभित है। पुनः पूर्ण चन्द्रकी बिशद किरणें पड़ रहीहैं इससे ऐसी मनोहर जगमगाहट प्रतीत होती है मानो चांदी के पानी से रासकुञ्ज लेपित हो, अतएव रासस्थल में महान् प्रकाश छा रहा है यह निष्कर्ष है। तथा रात्रिमें खिलने वाले कमल विकसित हैं उनके परागों के सौरभ को लेकर मलय वायु चलती है,

जिससे विरहियों के चिरकालीन विरह ज्वर शमन हो जाते हैं अर्थात शीतल मन्द, सुगन्ध वायु सेवित चत्वर (रासचौक) में श्रीप्रियतम रास कर रहे हैं। यहां नृत्य के अङ्गों का वर्णन से नृत्य का बर्णन भी जानना चाहिये, क्योंकि नृत्य के विना नृत्य के अङ्गों का पोषण नही होता है ॥१॥

सुषिरं वंश्यादि. ततं बीणादि, घनं कांस्यतालादि, तैर्मिलिता ये बरमुरजाः श्रेष्ठमृदंगाः तेषां ये रवाः ध्वनयः तन्मये तत्प्रचुरे वंशीःवीणादितुमुलनादमनोहरे-इत्यर्थः। ललितानां मंजीरवराणां नूपुरोत्तमानां यानि सिंजितानि ध्वनयस्तैर्मनोहरे चित्ताकर्षके तत्तथै वपुषा निनदेन शोभिता वदनचन्द्रा यासां तथाभूतानां तरुणीनां निचयस्य बृन्दस्य करविधुतिभिः पानिकम्पने मोदं राति ददातीति तस्मिन्, वदनानां चन्द्रतारूपकेण निनदानां पीयूषरूपत्वं ध्वनितम् ॥ करविधुति समुच्छालिताभिः कंकणमुद्रिकादिकान्तिभिः प्रमोदाधिक्यम् ॥ २ ॥

अर्थ—सुषिर-वंशी आदि, तत-वीणा आदि, घन-कांस्यमय तालादिक, घण्टा झालर मंजीरा आदि की ध्वनि से युक्त श्रेष्ठ मृदङ्गों की ध्वनि से रासकुञ्ज परिपूर्ण है रासमण्डल इस

समय इन वाद्यों की प्रचुरता से वाद्यमय होरहा है, अर्थात्—वंशी वीणा मृदङ्ग आदि के विशाल एवं मधुरनाद से मनोहर होरहा है। तथा ललित श्रेष्ठ नूपुरों की मधुर ध्वनि चित को चुरा लेती है। तत्तथै के निनाद से जिन चन्द्रवदनियोंके विग्रह सुशोभित हैं उन नायिका वृन्द के करकम्पनों से रासस्थल में परम प्रमोद की वर्षा हो रही है।

(भावः-जब नृत्य अत्यन्त वेग से होता है उस समय सभी नायिकाओं के शरीर से तत्तथै तत्तथै ऐसे मनोहर शब्द निकलते हैं, तथा सभी नायिकायें नृत्य के भावावेश में अपने करों को विद्युत् के सदृश चमकाती हैं जिससे महामोद प्राप्त हो रहा है) सभी नायिकाओं के विग्रह की उपमा चन्द्रमा से दी गई है अतएव उन विग्रहों से निकले हुये शब्दों को पीयूष के सदृश जानना चाहिये ऐसी ध्वनि है। साथसाथ करोंको उछालनेमें कंकण मुद्रिका आदि की कान्तियों से भी प्रमोदाधिक्य हो रहा है॥ (परमाचार्य रसिकशिरोमणि श्रीकरुणासिन्धु जी महाराज ने भी रसमालिका में "मणिभूमि पर लगेनचनि"-इस रासके पदमें कर कम्पन का भाव वर्णन किया है यथाः—

"बहुताल बाजहिं चरण चञ्चल मुरतकर मुख चष छुये।
मुक्ता कलोय नूपुर खसे जनु अमिय शर बहु शशि उये॥२॥

श्री रामप्रकाशरूपाणां राममूर्तीनां वामदक्षिणयोः पार्श्वयोः वलितानि स्थितानि युवतियुगानि तैः स्व स्वकरैः

परिकलितानि बद्धाः बाहवो यस्य रघुनाथतनुवृन्दस्य तेन सुन्दरतरे अतिकमनीये, काञ्चनमरकतमणिमालोपमया युवतियुवमालया मण्डिता रासस्थली बभाविति भावः। तदानीं रासदर्शनाय नभः स्थिताभिस्तं वीक्ष्य विगलितस्वप्रावीण्याभिमत्ताभिर्देवांगनाभिस्तन्नृत्यं ववन्दिरे इत्याह विमलेतिः—विमलेन संगीतविज्ञानात् परिशुद्धेन कलेन मधुरेण गानेन हतो नष्टो मानो गर्वो यासां तथाभूतानां सुरनर्तकीनामुर्वश्यादीनां निवहेन बृन्देन वर्णितः स्तवनीयतया निरूपितो निगमगीतो वेदश्लाघितश्च नर्तनभरो यस्मिन् तथाभूते ॥ ३ ॥

अर्थ-श्रीप्रियतमजू अनेक रूप धारण कर महारास करेंगे यह पूर्व कहा गया उसी को यहाँ दिखाते हैं:—श्रीप्राणवल्लभजू के अनेक विग्रहों के वाम दक्षिण पार्श्व में युग २ युवतियां स्थित हैं (अर्थात् प्रति विग्रहों के साथ एक नायिका वाम पार्श्व में तथा एक नायिका दक्षिण पार्श्व में स्थित हैं)

वे सभी अपने २ प्रियतम के कर कमलों को अपने २ कर कमलों से ग्रहण किये हैं-अर्थात परस्पर सभी नायिका नायक हाथ से हाथ मिलाकर नृत्य कर रहे हैं। यही क्रम अनन्त श्री करुणासिन्धुजी महाराज वर्णन करते हैं यथा-

सरद पून विमलचन्द विमल मही अनन्द कन्द-

श्रीरामचन्द्र रास रच्यो निरखन सखी धाई।
... ...

युग युग सखी बिच बिच एक मध्य राम निर्तत,
संगीत ताण्डवी सुगन्ध गति अनेक ल्याई ॥
गावत षट् राग राम रागिनि स्वर ताल ग्राम,
सब धरि सखि रूप राम रास हेतु आई ॥
श्रीजानकी रघुनंदन मन भावति भई ब्रह्मरैन,
श्रीरामचरण सकल जीव परमानंद पाई ॥ इत्यादि ॥

इससे रासमण्डल अत्यन्त सुन्दरतर होरहा है, कांचन तथा मरकत मणि की माला के सदृश नायिका नायक की मालाओं से रासस्थली में महती शोभा छा रही है । यहां काञ्चन सदृश नायिकायें हैं तथा मरकत मणि के सदृश श्रीप्रियतमजू के श्री-विग्रह समूह हैं । परस्पर बद्धहस्त होकर नृत्य करना ही माला कार जानना चाहिये ॥ उस समय रासोत्सव दर्शनके लिए आईं हुईं गुण गर्वीली देवाङ्गनायें आकाश मण्डल में स्थित होकर अपने गुण गौरव प्रवीणता आदि को त्याग कर इस नृत्य की वन्दना कर रही हैं, अर्थात्- प्रशंसा कर रही हैं। इसी को कहते हैं 'विमल' इस पंक्ति से-विमल कल गान से अर्थात् शास्त्रोचित्त ताल, स्वर, मूर्छना ग्राम आदि संगीत परिज्ञान युक्त मधुर स्वर गान से उर्वशी आदि सुर नर्तकियों का गर्व अपहरण होगया। तथा सभी देवाङ्गनायें इस महारासमें होने वाले नृत्य की स्तुति रूपमें वर्णन कर रही हैं। सामवेद के अनुसार गान तथा नृत्य

हो रहे हैं इस प्रकार अलौकि शोभा से युक्त रासमण्डल में श्री-रासविहारिणीविहारीजू नृत्य कर रहे हैं ॥३॥

भा०-कुन्दानां मन्दाराणाञ्च मकरन्दसौरभैश्चपलानां भृङ्ग-निकुरम्बाणां मधुपसमूहानां झंकारै र्जनितस्मरो येन तस्मिन्नि इत्यर्थः, क्रीड़ोद्दीपनम् ॥ श्रीहरिकविः स एव चकोरपतिः श्रीजानकीरघुनाथमुखचन्द्रचन्द्रिकायाः पीतत्वात् विलक्षण-श्चकोरवर्य्यः तस्य हृदयहरया कौमुद्या सान्द्रतरौ यौ जानकी-रामयोर्मुखविधुवदनचन्द्रौ ताभ्यां वरे सुशोभिते-इत्यर्थः ॥४

कुञ्जकी लतायें सभी पुष्पित हैं-पुण्डरीक पटल विकसित हैं तथा कुन्द-मन्दार के मकरन्दसौरभ समस्त कुञ्जको सुरभित कर रहा है, जिस सुगन्ध के परवश भ्रमर समूह चञ्चल होकर गुञ्जार कर रहेहैं, तथा इनके मधुर रसमय झङ्कार श्रवणसे नायक नायिकाओं के हृदयमें स्मर (मधुररस) का विकाश हो रहा है। श्रीहर्य्याचार्य चकोरपति हैं। अर्थात् चकोरकेसदृश श्रीप्रियाप्रिय-तममुखचन्द्रचन्द्रिका का पान कररहे हैं, अतएव विलक्षण चकोर, वर्य हैं, इनके हृदय को हरणकरनेवाली, रसमयी चन्द्रिका से परिपूर्ण, श्रीप्रियाप्रियतममुखचन्द्र से रासमण्डल सुशोभित है। भाव यह है कि छबि रूप अमृतमय चन्द्रिका से युक्त श्री-प्रियाप्रियतमजू के मुखचन्द्र रासमण्डल में अखण्ड एक रस उदीयमान है, तथा ग्रन्थकार का हृदय युगल रूपमाधुरी में आ-

सक्त है अतएव अपने को चकोरपति कहते हैं। अर्थात् प्राकृत चन्द्रमा की किरणों का पान करने वाला चकोर कहलाता है मैं तो अलौकिक श्रीयुगलमुखचन्द्रचन्द्रिका का पान करता हूँ अतः मैं चकोरों का पति हूँ। भाव यह है कि श्रीरासविहारिणीबिहारी जू का यह महारास नित्य अखण्ड हुआ करता है श्रीग्रंथकार का मन पीन मीन के सदृश इस महासुखसिन्धु में निरन्तर लीन रहता है। पूर्वमें कहा गया था कि चत्वर के विशेषणों से साङ्ग रास का वर्णन करते हैं वह रूपक यहां पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

श्लोक—वीणावाणी सुन्दरीवृन्दमुख्या-
ख्याता सद्भिर्लक्षणैः कुञ्जदेवी ।
सीताञ्चक्रे राघवं भावसारा-
रासोल्लासाज्जानकी दिव्यनीवी ॥१॥
निर्गत्य निर्गत्य ननर्त रामः,
सीताप्यखण्डादथ रासमण्डलात् ।
पुनश्च तत्रैव जगाम योगं-
हारादिवाच्छिन्न गुणान्मणीन्द्रः ॥२॥

इति श्रीहर्य्याचार्य विरचिते श्रीजानकीगीते रासविलास वर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—वीणा के सदृश मधुर रसीली वाणी बोलने वाली, सुन्दरी वृन्दों में अग्रगण्य, दिव्य लक्षणों से सम्पन्न, कुञ्जेश्वरी

(नित्य निकुञ्ज विहारिणी) श्रीप्रियतम स्नेह में श्रेष्ठा, (अथवा सारभाव जानने वाली) दिव्यवस्त्रधारिणी श्रीमिथिलेशराज-नन्दिनीजू ने रासरसके उमङ्ग में भरकर श्रीप्राणवल्लभजू को देखा, अर्थात् हास्य युक्त रसमय कटाक्ष से कोई विशेष भाव दिखाने केलिए संकेत किया ॥ १॥

श्रीप्रियाजू तथा श्रीप्रियतमजू अखण्ड रासमण्डल से निकल निकल कर नृत्य करते हैं और पुनः मण्डलमें आ जाते हैं, जैसे श्रेष्ठ मणि अखण्ड सूत्र युक्त हारमें लगा हुआ शोभा पाता है उसी प्रकार मण्डलरूपी हार टूटने नहीं पाता तब तक दोनों श्रीयुगलकिशोर नृत्य करतेहुये मण्डलमें श्रेष्ठमणि (सुमेर) के सदृश प्राप्त हो जाते हैं ॥ २॥

भाष्यम्-एवं सर्वसाधारणनृत्यानन्तरं स्वासाधारण-नटनप्रकाशनाय श्रीजानकीमनश्चकारेति वर्णयति वीणेति सुन्दरीवृन्दमुख्या जानकी रासोल्लासात् रासलास्या-वेशात् हेतोः तं प्राप्य वा राघवं वीक्षाञ्चक्रे ददर्श स्वासाधा-रणनृत्यविज्ञापनाय स्मितापांगेक्षांचक्र इत्यर्थः । कीदृशी वीणावाणी मधुरस्वरा सद्भिः पद्मिनीत्वगमकैः भावैः राम-स्नेहे सारा वरीयसी दीव्यनीवी वराम्बरा खड्गवन्धोऽयम्॥१

नृत्य विशेषं वर्णयति निर्गत्येति रामः सीता च अखण्डात् रासमण्डलात् निर्गत्य निर्गत्य निःसृत्य निःसृत्य ननर्त

पुनश्च तत्रैव मण्डले योगं जगाम भेजे, चकारेणासकृन्नृत्यं ध्वन्यते मण्डलान्निःसृत्य तत् प्राङ्गणे नृत्यतोस्तयोर्यावन्मण्डलस्थाने प्रभाविगमो न स्यात्तावतैव तत्र संभोग इति गति लाघवसौष्ठवं व्यङ्ग्यम् एतमर्थमुपमया दर्शयति हारादिवेति अछिन्नगुणात् अत्रुटितगुणात् हारान्मणीन्द्रो यथेति ॥२॥

इति श्रीवलदेवसूरि वि० श्रीजानकीगीतभाष्ये पञ्चमःसर्गः।५।

अर्थ—इस प्रकार से सर्व साधारण नृत्य के पश्चात् श्रीप्रियाजू ने स्वकीय असाधारण (अलौकिक) नृत्य प्रगट करने की इच्छा की इसी का वर्णन करते हैं-"वीणा" इस श्लोक से-सुन्दरी वृन्दों में (उमा, रमा, ब्रह्माणी, रति आदि सुन्दरी समूहों में) अग्रगण्या श्रीजनकराजनन्दिनीजू ने रास के उल्लास से उल्लसित होकर अथवा रास नृत्य के आवेश में भरकर प्रियतम श्रीरघुनन्दन को अपने अलौकिक नृत्य दिखलाने के लिये हास्य युक्त कटाक्षों से देखा । श्रीप्रियाजू कैसी हैं ? वीणावाणी हैं अर्थात् वीणा के सदृश मधुर स्वरवाली, पद्मिनी आदि दिव्य लक्षणों से युक्त हैं—(यथा-सर्व लक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमावधूः । वाल्मीकीय । सर्व दिव्यलक्षणों से सम्पन्न नारियों में परम श्रेष्ठ वधू हैं।) श्रीप्रियतम स्नेह में सार हैं अर्थात् श्रेष्ठ हैं, तथा दिव्यवस्त्रधारिणी हैं। यह श्लोक खड्ग बन्ध है ॥ १ ॥

अब नृत्य विशेष का वर्णन करते हैं—"निर्गत्य" इस श्लोक से श्रीकौशलराजकिशोरीजू तथा श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजू अखण्ड रासमण्डल से निकल निकल कर नृत्य करते हैं पुनः उसी मण्डल में आ जाते हैं, चकार से अनेक बार नृत्य होना सूचित करते हैं मण्डल से दोनों निकल कर रास प्राङ्गण में नृत्य करते हुये जितने काल में मण्डल में प्रकाश का अभाव नहीं होता उतने कालके भीतर ही मण्डल में प्राप्त हो जाते हैं, इससे गति में शीघ्रता तथा सुन्दरता सूचित करते हैं इसी अर्थ को उपमा के द्वारा दिखाते हैं, अखण्डसूत्र युक्त हार में लगे हुये श्रेष्ठमणि के सदृश, रासमण्डल में नृत्य गान करती हुई सखियों से घिरे हुये श्रीयुगलकिशोर शोभा पा रहे हैं।

इति श्रीसद्गुरुसदनीय पं० श्रीसीतारामशरण कृत "रसबोधिनी" भाषाटीकायां पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठः सर्गः ॥

श्लोक—इत्थं स्वलास्योदितसाधुमाधुरी-
पूर्णान्तरास्ताः वनिता रघूत्तमः।
अरीरमत् कुञ्जचयेषु चातुरी-
चर्याञ्चिताः कामकलाविचेष्टितैः ॥ १ ॥
विद्युद्घनाङ्गौ घनविद्युदम्बरौ,
श्रीजानकीदाशरथी मुदाल्यः।
उदीर्णगन्धैर्व्यजनैरमन्दैः-
सिषेविरे साधुभिरम्बुभिश्च ॥ २ ॥
प्राचीरेण प्रांशुना दीप्यमानं,
मल्लीक्लृप्तेनापि सत्तोरणेन ॥
यातौ कान्तौ पुण्यचन्द्रातपाढ्यं,
भावत्तुब्धौ कौसुमं चित्रगेहम् ॥३॥

अर्थ—इस प्रकार अपने नृत्य की रसमयी माधुरी से परिपूर्ण चित्तवाली, तथा केलिकला में परमकुशला नायिकाओं को रसिकशिरोमणि श्रीप्राणवल्लभजू ने कुञ्जसमूहों में मधुररस कला की विविध चेष्टाओं से रमण कराया। अर्थात् कुञ्ज प्रति

अनेक रूप धारण कर सभी नायिकाओं के साथ विहार किया) ॥ १ ॥

बिजली और मेघके सदृश विग्रह वाले श्रीप्रियाप्रियतमजू मेघ और बिजली के सदृश वस्त्र धारण किये हुये हैं, इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों से, परम सुगन्धित पुष्पमय पङ्खों, से तथा स्वच्छ सुगन्धित जल आदि से सखियों ने श्रीयुगललाड़िली-लालजू की सेवा की। अनन्तर श्रीप्रियाप्रियतमजू प्रेमकेलि पर-तन्त्र होकर पुष्पमय रचित, चित्रित शयनकुञ्ज में प्राप्त हुये ॥२ शयनकुञ्ज कैसा है ? सरल विशाल खम्भों से तथा मालाओं के तोरणों से जिसके प्रान्तभाग देदीप्यमान हैं, पुष्पमय वितान (चँदोवा) आदि से श्रेष्ठ तथा चित्रित श्रीशयनकुञ्ज में दिव्य दम्पती बिहार के लिये प्राप्त हुये ॥ ३ ॥

भाष्यम्—एवं रासनृत्यं निरूप्याथ रहस्यकेलिं निरूपयति इत्थमिति रघूत्तमो रामः ताः जानकीप्रमुखाःवनिताः परमानुरागिणीः कान्ताः कुञ्जचयेष्वरीरमत् रमयतिस्मेत्यर्थः ॥ वनिता जनितार्थानुरागीयां तु योषिदित्यनुशासनात्, कीदृशीः स्वस्यलास्योदितायाः साध्वीमाधुरीतया पूर्णमन्तरं चितं यासां ता इत्यासक्तिनिर्भरो व्यङ्ग्यः । चातुरीचर्याश्रिताः कामकलापण्डिताः, कामकला विचेष्टितैरिति विशेषणे तृतीयान्तैर्विशिष्ट इत्यर्थः । एवञ्चोभयत्र के-

लिकलानैपुण्यसाम्यव्यञ्जनात् शृंगारस्य परिपोषश्च व्यज्यते। अथ कान्तास्ताः सर्वाः रमणीर्वासिताम्बुव्यजनपाद संवाहनाद्यैर्दास्यः परिचेरुरिति बोध्यम् ॥ १ ॥

अर्थ—इस प्रकार रासनृत्य के पश्चात् रासकेलि का निरूपण करते हैं—"इत्थं स्वलास्योदित" इस श्लोकसे श्रीप्राणवल्लभजूने श्रीप्रियाजू को तथा परम अनुरागवती श्रीप्रियाजू की अङ्गभूता वनिताओं को कुञ्जसमूहों में रमण कराया। परम अनुरागशालिनी नायिकाओं में ही वनिता शब्द का व्यवहार होता है ऐसा अनुशासन है। अपनी नृत्य कलाओं से प्रकटित समीचीन मधुरिमा से सभी नायिकाओं के हृदय परिपूर्ण हैं। इससे पूर्ण आसक्ति व्यंजित होती है। सभी वनितायें केलि कलाओं में पण्डिता हैं। श्रीप्रियतमजू ने उन सभी नायिकाओं को रसकला की विविध चेष्टाओंसे रमण कराया। इस प्रकार दोनों ओर केलिकलाओं में निपुणता समानही वर्णन कियागया इससे शृङ्गारका पोषण पूर्णरूपसे कियागया ऐसा समझनाचाहिये केलि के पश्चात् उन सभी रमणियों की सुगन्धित जल व्यजन (पंखा) पादसंवाहन (चरणसेवन) आदिसे दासियों ने सेवा की ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि श्रीप्रियतमजू की ये सभी भोग पत्नियां हैं, इन प्रत्येक नायिकाओं की सेवा के लिये बहुत सी दासियां हैं यथा—

यद्यपि अली अपार, मुख्य गनी गन नायिका।
द्वै द्वै हजार हजार, एक एक सखी के किङ्करी॥
(नेहप्रकाश)॥ १ ॥

भाष्यम्—अथ मुख्यया श्रीसीतया सह श्रीरामस्य-परिचर्य्यां सख्यश्चक्रुरित्याह—विद्युदिति आल्यो मुदा श्री-जानकीदाशरथी सिषेविरे, कीदृशौ विद्युद्घनाविवांगे ययोस्तौ कैः सिषेविरे इत्याहः उदीर्णेति व्यजनैरुदीर्णगन्धै-रिति कुसुमरचितत्वं सूच्यते। अमन्दैरत्युत्तमैरिति बहुवर्णैः कुसुमैः चित्रयोगात् साधुभिः समीचीनैरिति स्वच्छत्व सौगन्ध्ययोगात्। आत्राप्युदीर्णगन्धैरिति योज्यम्। अत्र विद्युद्घनांगाविति विशेषणाभ्यां सुरतान्तैः रासकालिकवे-शापनयः, स्नानमाल्याल्पभूषणधारणं चोभयोर्व्यज्यते॥ अरुणकंचुकी नीलसारी श्रीजानकी परिदधौ श्रीरामस्तु-बद्धरक्तोष्णीषः पीताम्बरोत्तरीयो बभूवेति च ॥ २ ॥

अर्थ—अब मुख्य रूपसे श्रीराजकिशोरीजू के साथ श्री-प्राणवल्लभजू की परिचर्य्या सखियों ने की। इस विषय को वि-द्युद्घनाङ्गौ" इस श्लोक से कहते हैं सखियों ने आनन्द पूर्वक श्रीप्रिया-प्रियतमजू की सेवा की। दोनों कैसे हैं! बिजुली तथा मेघ के समान जिनके बिग्रह हैं, अर्थात् गौरश्याम हैं। तथा जिनके घन और विद्युत् के समान बस्त्र हैं। अर्थात् श्रीप्रियाजू नीलसारी पहिरी हैं तथा श्रीप्रियतमजू पीताम्बर धारण किये हुए हैं, उत्कट गन्धों से युक्त व्यजनों से सखियों ने सेवा की? 'उदीर्ण-

गन्धैः, इस विशेषण से व्यजन (पंखों) को पुष्प रचित होना सूचित करते हैं। "अमन्दैः" अर्थात अत्युत्तम बहुत वर्णों के पुष्पों से रचित होने से चित्रित हैं अतएव अत्युत्तम कहा गया है। "साधुभिः,, अर्थात् समीचीन है विशद तथा सुगन्ध युक्त होने से समीचीन कहा गया। यहां पर भी "उदीर्ण गन्धैः,, इस विशेषण को लगाना चाहिये। विद्युत् घन के सदृश अङ्ग हैं-इन विशेषणों से सुरतान्त में रासकालिक शृङ्गार को उतारकर दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजू को स्नान, माला अल्प आभूषण धारण कराया गया यह ध्वनि है। अरुणकंचुकी नीलसारी, श्रीप्रियाजू-ने धारणकिया, तथा पीताम्बर, चादर, लालपाग, श्रीप्रियतमजू-ने धारण किया ॥२॥

एवं सखीभिः परिचरितौ कुसुममन्दिरे सुषुपतुरित्याह। प्राचीरेणेति–कान्तौ श्रीसीतारामौ कौसुमं पुष्परचितं चित्रगेहं यातौ, शयनार्थं प्रासवन्ताविति भावः। कीदृशौ भावलुब्धौ आसक्तिभरविवशीकृतौ, कीदृशं गेहं प्रांशुना सरलदीर्घेन सलाकावष्टम्भादुच्चेन मल्लीभिः. क्लृप्तेन रचितेन प्राचीरेण दीप्यमानं समुल्लसत् तथा मल्लीक्लृप्तेन सत्तोरणेन च दीप्यमानं पुनः कीदृशं पुष्पचन्द्रातपैः कुसुमवितानैराढ्यं चतुर्षु प्रांगणेष्विति शेषः चित्रशब्देन विविधवर्णैः पुष्पैर्गवाक्षादि रचना व्यज्यते ॥ ३ ॥

इस प्रकार सखियों से परिचरित होकर श्रीप्रियाप्रियतम.

जू ने पुष्पकुञ्ज में शयन किया इसी विषय को "प्रावीरेण,, इस श्लोक से वर्णन करते हैं। श्रीप्रियाप्रियतमजू चित्रित पुष्पकुञ्ज में शयन करने केलिये प्राप्त हुए। यह भाव है। दोनों कैसे हैं? 'भावलुब्धौ' प्रेमरसके परवश है। कैसा कुञ्जगृह है! सरलदीर्घ खम्भों से उच्च तथा सभी प्रान्तों में मालाओं की रचना है इससे देदीप्यमान है एवं मालाओंके तोरणोंसे सुसज्जित है पुनः पुष्पों के (वितानों) चंदोवों से चारों ओर प्राङ्गण सुशोभित है। 'चित्र' शब्द से विविध वर्णों के पुष्पों से (गवाक्ष) खिड़की आदि की रचना भी व्यञ्जित है ॥३॥

❀ सोरठी रागे त्रिताली ताले ❀

विरचितरतिसमशोचितशयने,
धामनि विविध कुसुमकृतचयने ।१।
विहरति रामो जनकजया,
मदनतरलमतिरमितमया ॥ध्रु०॥
विधुरपि चुम्बति विधुमनुपालम्,
वलयति कनकलतापि रसालम् ॥२॥
अरुणसरोरुहयुगमतिवेलम्,
कोकयुगोपरिरचयति खेलम् ॥३॥

मन्थरवपुरुररीकृतकम्पा,
असितघनोपरि निवसति शम्पा ॥४॥
हरि भणितं रघुराजविहारम्,
कुरुत बुधा हृदि मधुरिमसारम् ॥५॥

अर्थ—विविध वर्णों के पुष्पों से रचित, रतिसमर के योग्य पर्य्यङ्क के ऊपर अपरिमित सौन्दर्यसागरा श्रीमैथिलीजू के साथ रतिरसपटु श्रीप्राणवल्लभजू विहार करते हैं। श्रीप्रियाजू के दिव्यअङ्गों के सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्य का आस्वादन करते हुए रसशास्त्रानुकूल, क्रीड़ा कर रहे हैं, हे रसिक गण ! श्रीहरि- (आचार्य) रचित श्रीमैथिलीप्राणवल्लभजू का विहार की मधुरिमा का आपसब पान करें।

भाष्यम्—अथ कुसुममन्दिरे विराजमानयोस्तयोः सौन्दर्य्य विशेषदर्शनेनोदीपितस्मरयोः पुनर्मदनकेलि वर्णयति:—विरचितेति—जनकजया सह श्रीरामो विहरति क्व धामनि मन्दिरे, कीदृशे विविधैः कुसुमैः कृतंचयनं निर्माणं यस्य तस्मिन् । पुनः कीदृशे-विरचितं रति-समरोचितं स्मरयुद्धार्हं शयनं पर्य्यङ्किका यस्मिन् तथा-भूते कीदृशो रामः मदनेन सीतास्पर्शानुभवोल्लसितेन

तरला चापल्यं नीता मतिर्यस्य सः। कीदृश्या अमिता श्रीरामस्पर्शानन्दोच्छ्वलनादपरिमिता मा सौन्दर्य्य-सम्पतिर्यस्यास्तया । अत्रोभयोः परस्परासक्तिसमान-सौन्दर्य्यशालिताव्यञ्जनया निबिड़शृङ्गारपात्रता ध्वन्यते ।१

अथ प्रथमातिशयोक्त्या रहस्यलीलां वर्णयति विधुरपीति विधुश्चन्द्रोऽपि विधुं चन्द्रं चुम्बति। कीदृशं अनुपालम् अनु निरन्तरं सुधाप्रदानेन पालयतीति तम्। अत्र विधोर्विधुचुम्बनमदृष्टाश्रुतचरमित्यपिशब्दात्। विधु-रिति श्रीराममुखं पुनर्विधुमिति श्रीसीतामुखमध्यवसीयते । कनकलतापि रसालमाम्रं वलयति वेष्ठते। कनकलतयाम्रस्य वेष्टनमदृष्टचरमित्यपि शब्दात्, कनकलतेति श्रीसीता-ध्यवसीयते रसालमिति श्रीरामः, इह तमाल शब्दं विहाय रसालशब्दोपन्यासस्तस्य परमरसिकत्वप्रत्यापनाय॥ २॥

अरुणसरोरुहयुगं कर्त्तृ कोकयुगोपरि—अतिवेलंभृशं यथा स्यात्तथा खेलं रचयति। अत्रारुण सरोरुहयुगमिति श्रीरामस्य करद्वयं कोकयुगेति श्रीसीताया वक्षोजयुग्ममध्यव-सीयते। खेलशब्देन गाढ़स्पर्शः॥३॥

अथ विपरीतरतिं व्यञ्जयति मन्थरेति शम्पा दामिनी

असितघनोपरि नीलमेघोपरि निवसति कीदृशी सती मन्थरं निश्चलप्रायंवपुर्यस्याः सा तथाप्युररीकृतः कम्पश्चापल्यं यया सा अत्रासितघनेति श्रीरामः शम्पेति श्रीसीता चाध्यवसीयते। मान्थर्य्यकम्पाभ्यां प्रयोगशैथिल्यं व्यज्यते, अंतर्निगीर्णस्योपमेयस्योपमानेन निश्चये प्रथमातिशयोक्तिरलंकारः ॥४॥

कविराह हरिरिति स्फुटम्। पञ्चपदीत्वं रहस्यलीलाध्यानावशेन नियमविस्मृतेः ॥५॥

अर्थ—इस प्रकार पुष्प मन्दिर में श्रीयुगलकिशोर पर्यंक पर विराजमान हुये, परस्पर सौन्दर्य का आस्वादन से मधुररस का उद्दीपन हुआ, अतः दोनों विहार करने लगे।

श्रीग्रन्थकार रहस्यलीला का ध्यान करने में नियम भूल गये अतः उन्होंने अष्टपदी के स्थान में पञ्चपदी का ही निर्माण किया।

श्लोक-रामस्यजानुपरिषेवितसन्नितम्बा,
वक्षस्युपाहितकुचास्यभुजोपधाना।
कण्ठे समर्पितभुजा वदनेधृतास्या,
श्रीजानकी कुसुमचापधुताधिशेते ॥१॥

भाष्यम्—एवं साम्प्रयोगिकीं लीलां निरूप्याथ शयनं निरूपयति तत्र गौरीश्यामौ दम्पती गौरश्यामाभ्यां वपुर्भ्यां श्यामगौरयोर्वाससोः पुनरूक्ताद्वैफल्यं सभावयन्तौ निजवपुषी मिथोवाससी कृत्वा कुसुमपर्य्यंके सुषुपतुरिति व्यञ्जयन्नाह-रामस्येति श्रीजानकी शेते कीदृशी कुसुमचापेन धुताकम्पितापि अत्र कम्पने सति शयनमसम्भावीत्यपिशब्दः वस्तुतस्तु परमसुन्दरस्य रसिकशिरोमणेः कान्तस्य दर्शनस्पर्शनयोस्तृप्त्यभावान्निद्राया अप्राप्तिरिति। पुनः कीदृशी रामस्य जानुना परिषेवितः संश्लिष्टः सन्नितम्बो यस्याः सा रामस्य वक्षस्युपाहितौ गाढमर्पितौ कुचौ यया सा अस्य रामस्य भुज उपधानं यस्याः सा, उपधानं मूर्द्धावलम्बः स्पष्टमन्यत् ॥१॥

अर्थ—इस प्रकार साम्प्रयोगिक लीला का निरूपण करने के पश्चात् शयनकुञ्ज की झांकी का निरूपण करते हैं- 'रामस्य' इस श्लोक से-गौर श्याम विग्रह वाले श्रीप्रियाप्रियतमजू श्याम गौर वस्त्रों को धारणकर परस्पर सर्वाङ्ग संश्लिष्ट होकर पुष्प पर्यङ्क पर शयन करते हैं। वस्तुतः परम सुन्दर रसिकशिरोमणि श्रीप्राणवल्लभजू के दर्शन-स्पर्श से श्रीप्रियाजू को तृप्ति नहीं होती है अतः निद्रा नहीं आ रही है, शेष भाव स्पष्ट हैं ॥१॥

श्लोक-सुरतरुरनुगजनानां,
सुरतरुचिर्जनकतनुजायाः ।
रघुपतिरतिकमनीयः कौशल्या-
हृदयनन्दनो जयति ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजू की सूरत में आसक्त, निजभक्तों के कल्पवृक्ष, श्रीकौशल्याजू के हृदय को आनन्द देने वाले, अतिकमनीय सौन्दर्यमाधुर्यलावण्यसुधासिन्धु श्री-प्राणबल्लभजू की सदा जय हो ॥ २ ॥

भाष्यम्—एवं विप्रयोगपूर्वकसंभोगवर्णनेन साङ्ग-शृङ्गारो निरूपितः, अथान्तेऽपि मङ्गलमाचरति सुरेति रघुपति-र्जयति शत्रून्निहत्य निजभक्तानानन्दयन् स्वप्रेयस्या विहरन्-स्वोत्कर्षमाविष्करोतीत्यर्थः कीदृशः सन् अनुगजनानां निज-सेवकानां सुरतरुः तद्वदभीष्टपूरकः, जनकतनुजायाःश्रीसीता-या एव सुरते रुचिरासक्तिर्भरो यस्य सः। अतिकमनीयः परम-सुन्दरः कौशल्याहृदयमानन्दयतीति तथा तस्याः कुमार इत्यर्थः ॥ १ ॥

अर्थ-इस प्रकार विप्रयोगपूर्वक संभोगवर्णन से ग्रन्थकार ने साङ्ग शृङ्गार का निरूपण किया। तत्पश्चात् मङ्गलाचरण करते

हैं "सुरतरु" इस श्लोक से श्रीचक्रवर्तीकुमार जय को प्राप्त हों, अर्थात् आश्रितों के बाह्य-अन्तर शत्रुओं को विनाश करके स्वकीय भक्तों को आनन्द प्रदान करते हुये श्रीप्राणवल्लभाजू के साथ विहार करते हुये अपना उत्कर्ष का आविष्कार करें।

कैसे हैं? कल्पवृक्ष के सदृश निज सेवकों के अभीष्टपूरक हैं। श्रीजनकनन्दिनीजू के सुरत (केलि) में जिनकी पूर्ण-आसक्ति रहती है, तथा परम सुन्दर हैं श्रीकौशल्याजू के हृदय को आनन्द देने वाले हैं अर्थात् श्रीकौशल्यानन्दवर्धन श्रीरघुनन्-जू की सर्वदा जय हो॥ १॥

❀ परज रागे त्रिताली ताले ❀

जय रघुनन्दन जगदभिवन्दन,
जय जय जनकसुते।
जयवरनिगमगदितगुणसंचय,
जय जय भुवननुते॥ १॥
जय जय दाशरथे जय जानकि॥ ध्रु०॥
जय जितदूषण सुरकुलभूषण,
जय जय हरिदयिते।
जय कविकमलविरोचनसुन्दर,
जय जय निखिलहिते॥ २॥

जय दशमुखतृणनिकरहुताशन,
जय जय युवतिमणे ।
जय जनसदयहृदयसकलेश्वर,
जय जय नतचरणे ॥ ३ ॥
जय निजसेवकगणभवनाशन,
जय जय पुरुकरुणे ।
वस हरिवचसि विमलरसधारिणि,
जय जय महितगुणे ॥ ४ ॥

अर्थ-ग्रंथकार अब श्रीयुगलकिशोरजूका मङ्गलाशासन करते हैं हे! समस्त जगत से वन्दित श्रीरघुनन्दनजू ? आपकी जयहो, हे श्रीजनकराजनन्दिनि ? आपकी जय हो २ । हे श्रेष्ठ वेदशास्त्र आदि से वर्णित गुणसमूहवाले आपकी जय हो । हे सम्पूर्ण-भुवन से वन्दिते ? आपकी जय हो । हे श्रीदशरथनन्दनजू आप की जय हो, हे श्रीजनकनन्दिनीजू आपकी जय हो ॥१॥

हे दूषण को जीतने वाले तथा सुरकुल के भूषण ? आप की जय हो । हे श्रीप्रियतमजू की प्राणवल्लभे ? आपकी जय हो जय हो । हे कविकुल रूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य ! हे सुन्दर ? आपकी जय हो । हे संसार के कल्याण करने वाली श्रीराजकिशोरीजू आपकी जय हो ॥२॥

हे दशमुखरूपी तृणसमूह के नाश करने में अग्निरूप ! आपकी जय हो। हे युवतियों में श्रेष्ठ श्रीप्रियाजू आपकी जय हो २। हे सदय हृदयजनों के सर्वेश्वर ! आपकी जय हो २। हे समस्त जगतसे पूजित चरणवाली श्रीप्रियाजू आपकी जयहो२

हे निज सेवकों का भव (जन्म मरण) नाश करने वाले ! आपकी जय हो हे अपार करुणामयी श्रीराजकिशोरी-जू आपकी जय हो २। हे श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण श्रीप्रियाजू विमलरस को धारण करने वाले श्रीहरि-(आचार्य) के वचनों में श्रीप्रियतमजू के साथ आप निवास करें ॥ ४ ॥

भाष्यम्—अथोभयोरुत्कर्षाभ्यर्थनरूपमंगलमाचरति जयेति हे रघुनन्दन त्वं जय निजोत्कर्षमाविष्कुरु। ननु कोऽसौ ममोत्कर्षस्तत्राह जगदिति जगति विश्वस्मिन्नभिवंदनं संस्तुतिर्यस्य हे तादृश विश्ववंद्यत्वरूपमुत्कर्षं प्रकटयेत्यर्थः, हे जनकसुते त्वं जय जयेति वीप्सया चैव निजानुरागभरो निर्दिष्टः। वरनिगमैरुपनिषद्भिर्गदिताः कण्ठत उक्ताः गुणसंचयाः सौन्दर्य्यमाधुर्य्यसर्वेश्वरत्वभक्तवात्सल्यादयो यस्य हे तादृशः भुवनैस्तद्वर्तिभिर्देवमनुष्यादिभिर्नुते स्तुते हे जानकि॥१

अर्थ—अब ग्रन्थकार दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजू का उत्कर्ष की प्रार्थना रूप मङ्गलाचरण करते हैं, "जय" इस पदसे-हे रघुनन्दन ! आप विजयको प्राप्त हों, तथा अपना उत्कर्ष प्रकट

करें "यदि आप कहें कि कौनसा 'मेरा उत्कर्ष है जिसको मैं प्रकट करूं'" इस अपेक्षा पर कहते हैं कि विश्व भर में आपकी वन्दना होती है अतः विश्ववन्द्यत्व रूप उत्कर्ष को आप प्रकट करें। हे जनकनन्दिनि ? आपकी जय हो जय हो, यहां पर दो बार जय जय कहने से श्रीप्रियाजू में अपना अनुराग का अधिक होना सूचित करते हैं। हे श्रीगुणसागरजू ? आपके सौन्दर्य माधुर्य सर्वेश्वरत्व भक्तवात्सल्य आदि अनन्त दिव्यगुण समूहों का उपनिषदों ने कण्ठ से गान किया है। अतः आपकी जय हो। हे भुवननुते ! अर्थात् देव-मनुष्य आदि लोक निवासियों से वन्दित श्रीराजनन्दिनीजू आपकी जय हो ॥१॥

भा०—जितो दूषणास्तन्नामा राक्षसो येन हे तादृश यद्वा दूषणं माया हे निरस्तमाय सच्चिदानन्दमूर्त्ते हे सुरकुलभूषण महेन्द्रादिशोभाकर हे हरिदयिते श्रीरामप्रेयसि ?। कवय एव कमलानि तेषां विरोचन रवे ? हे कविप्रसादकारिन् ? हे सुन्दर ! हे निखिलहिते सर्वप्राणिहितकारिणि श्रीजानकि ॥२॥

अर्थ-हे दूषण नामक राक्षस को जीतने वाले ? अथवा दूषण माया उससे रहित, अर्थात् सच्चिदानन्दविग्रहरूप आपकी जयहो, हे सुरकुलभूषण ! इन्द्रादि देवताओंकी शोभाबढ़ानेवाले ! आपकी जयहो। हे श्रीप्रियतमजूकी प्राणवल्लभे आपकी जयहो। हे कवि समूह रूप कमल को विकाश करने वाले, एवं परममाधुर्य लाव-

ण्यरूप श्रीचक्रवर्तीकुमारजू आपकी जय हो। हे समस्तप्राणियों की हित करनेवाली श्रीप्रियाजू आपकी जय हो ॥२॥

भा०-दशमुखो रावण एव तृणनिकरस्तस्य हुताशन हे रावणान्तकेत्यर्थः ॥ अत्रानायासस्तद्वधो व्यंग्यः । हे युवतिमणे तरुणीरत्नभूते श्रीजानकि जनेषु सदयं हृदयंयस्य हे तादृश सर्वानुरागिन्नित्यर्थः हे सकलेश्वर-सर्वाध्यक्ष, नतौ नमस्कृतौ चरणौ यस्यास्तत्सम्बोधने हे सर्ववंद्यपादे श्रीजानकि ॥३॥

अर्थ-हे दशमुख-रावणरूप तृणसमूह को नाशकरने में प्रज्वलित अग्निस्वरूप! अर्थात् हे रावणान्तक श्रीरामभद्रजू आपकी जय हो। यहां पर अग्नि के दृष्टान्त से अनायास हीं रावण का बध व्यंजित है। हे युवतिमणे! नायिकाओंमें रत्नभूत श्रीराजनन्दिनीजू आपकी जय हो (सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा-वधूः) ॥ हे जनों के प्रति दयामय हृदयवाले अर्थात् सर्व-अनुरागी हे सभी के अध्यक्ष श्रीरघुवंशविभूषणजू? आपकी जयहो हे सभी देवमनुष्य आदि से वंद्यचरणवाली श्रीप्रियाजू आपकी जय हो ॥३॥

भा०-निज सेवकगणस्य स्वभक्तवृन्दस्य भवः स्वस्मादरस्मिन् वासना तस्य नाशन हे भक्तान्याभिलाषनाशिन्, एतेन भक्त

विषयकानुरागशालित्वं ध्वन्यते । यदुक्तं दर्शनध्यान-संस्पर्शैर्मत्स्यकूर्मविहंगमाः स्वान्यपत्यानि पुष्णन्ति तथा-हमपि पद्मजेति भक्तानितिशेषः।

हे पुरुकरूणे प्रचुरदयावति श्रीजानकि हे महितगुणे महिताः पूजिताः यस्याः सेति भक्तवात्सल्यादीन् रामनिष्ठा-नपेक्ष्य श्रीजानकीनिष्ठानां गरीयस्त्वं व्यज्यते ।

हे श्रीराम त्वं च, श्रीजानकि त्वं च, हरेः युस्मत्सेवक-स्य मे वचसि जानकीगीताख्ये प्रबन्धे वस तदधिदेवता भूत्वा तत्प्रकाशयेत्यर्थः कीदृशे विमलं विशुद्धप्रेममयं रसं शृंगारं धारयति व्यञ्जयतयेति तथाभूते ॥४॥

अर्थ हे अपने भक्तों के अपने से अतिरिक्त वासनाओं का नाश करने वाले ! आपकी जय हो इससे भक्तविषयक अनुराग से युक्त श्रीराजकिशोरीजू हैं ऐसी ध्वनि है । जैसा कहा गया है 'जैसे दर्शन ध्यान स्पर्श से मीन-कछुआ-तथा पक्षियां अपने २ बच्चों का पालन करती हैं उसी प्रकार मैं भी अपने भक्तों का पालन करता हूँ (भाव यह है कि मछली अपने बच्चों को देख कर पालन करती है कछुआ ध्यान (स्मरण) कर एवं पक्षीगण स्पर्श द्वारा अपने बच्चों का पालन करते हैं, उसी तरह से श्री रामभद्रजू भी किन्हीं भक्तों को समीप रखकर किन्हीं भक्तों को दृष्टि के द्वारा किन्हीं भक्तों को ध्यानके द्वारा यथाधिकार पालन

करते हैं) हे प्रचुरदयावती श्रीजनकराजनन्दिनि ! आपकी जय हो । हे-पूजितगुणों से युक्त श्रीप्रियाजू ! आपकी जयहो जयहो।

ग्रन्थकार भक्तवात्सल्य आदि गुण समूह श्रीचक्रवर्तीन्द्र-नन्दनजू की अपेक्षा श्रीमिथिलाधिपराजनन्दिनीजू में अधिक सूचित करते हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि हे प्राणवल्लभ श्रीरघुनन्दन-हे श्रीप्राणवल्लभे श्रीस्वामिनीजू ? आप दोनों दम्पती का सेवक श्रीहरि-(आचार्य) की यह श्रीजानकीगीत नामक प्रबन्ध में आप दोनों निवास करें अर्थात् इस ग्रन्थके अधिदेवता होकर इस ग्रन्थ को प्रकाश करें ।

कैसा प्रबन्ध है ! विमल है, अर्थात् विशुद्ध प्रेममय शृङ्गाररस को व्यङ्ग्य रूपसे धारण किये हुए है ॥४॥

श्लोक-विद्याविभूषणयुतो हरिरब्जनाभ-
पादारविन्दमधुपो यदिदं व्यधत्त ।
श्रीजानकीचरितगीतमुदग्रभावा-
स्तत्साधवः प्रतिदिनं मुदिताः पिबन्तु ॥१

इति श्रीहर्य्याचार्य्य विरचिते श्री जानकी गीते सानन्द श्री-सीता रघुनन्दनो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—विद्यारूपी विभूषणोंसे विभूषित, कमलनाभ अर्थात् सर्वान्तरात्मी श्रीजानकीवल्लभजू के पादारविन्दमकरन्दमधुपाय-

मानमानस श्रीहर्य्याचार्यमहाराजने इस श्रीजानकीगीतनामक काव्य की रचना की है, हे रसिकसन्तगण ! इस श्रीजानकीगीत का आपसब आनन्दपूर्बक परमप्रेम के साथ प्रतिदिन पानकरें ॥१

भाष्यम् —अथ प्रबन्ध समापयंस्तदध्ययनाय साधून् प्रार्थयते विद्येति-अब्जनाभस्य श्रीरामस्य पादारविन्दयोर्मधुपः श्रीपादमाधुर्य्यलम्पटमनाः हरिराचार्य्यो यदिदं जानकीचरितगीतं नाम काव्यं व्यधत्त प्रकटितवान् तत् साधवो भक्ताः पिबन्तु सादरं शृण्वन्त्वित्यर्थः। कीदृशाः सन्तः मुदिताः सहर्षाः उद्ग्रभावाः उत्कटप्रेमाणः श्रीजानकीचरणैकनिष्ठाः इतियावत्। कीदृशो हरिरिति विद्या वेदान्त-साहित्य-संगीतादिव्युत्पत्तिस्तद्रूपं यद्विभूषणं नतु स्वर्णरत्नादि तेन युतो मण्डितः इति विरक्ति व्यञ्जनाद्रहस्योपासनयोग्यता दर्शिता, पक्षे विद्याविभूषणनामा कश्चित् स्वमित्रं तेन युतइति तेन विमर्शो व्यज्यते ततश्च ग्रन्थस्य परिशुद्धिसौहार्दञ्च व्यङ्ग्यम्, अस्मिन् हरिकाव्ये विलसन्तिरसादयो बहुव्यङ्ग्याः विस्तरभयान्न मया ते निखिलाः एतद्भाष्ये प्रोक्ताः ॥१॥

श्लोक-श्रीजानकि त्वयि कृपा प्रविसर्पि-
वीचिरुद्भाति सर्वविषयेति वदन्ति सन्तः।

तेनाहमुद्धतमनाः प्रभवामि देवि,
त्वद्गीतनीरजसुगन्धविसारदत्तः ॥ १ ॥

इति श्रीबलदेवसूरि विरचिते श्रीजानकीगीतभाष्येषष्ठःसर्गः ॥६॥

अर्थ--अब ग्रंथकार श्रीहर्य्याचार्यजीमहाराज इस प्रबंध को समाप्त करते हुए इस ग्रन्थरत्न का अध्ययन केलिए सन्तोंसे प्रार्थना करते हैं "विद्याविभूषण॰॰" इस श्लोक से--कमलनाभ श्रीकोशलराजकिशोरजू के पादारविन्दमकरन्दमधुपायमान॰ मानस श्रीहर्य्याचार्यजी ने जो यह श्रीजानकीगीत नामक काव्य को प्रकट किया है अर्थात् निर्माण किया है आप भक्तगण आदर पूर्वक इस काव्यको श्रवणपुटों के द्वारा पान करें अर्थात् सादर श्रवण करें। किसतरह ? हर्षयुक्त तथा उत्कट प्रेमके साथ अर्थात् श्रीजनकराजनन्दिनीजू के श्रीचरणों में पूर्णनिष्ठ होकर श्रवण करें कैसे श्रीहर्य्याचार्य हैं ? वेदान्त साहित्य संगीत आदि शास्त्रों की योग्यता रूप विभूषणों से विभूषित हैं, न कि स्वर्ण-रत्न-आदि (प्राकृत) भूषणों से सुशोभित हैं। इससे अपने में वैराग्य सूचित करते हुये आपने रहस्य उपासना की योग्यता भी सूचित की (भाव यह है श्रीप्रियाप्रियतमजू के चि-न्मयरहस्य का वही आस्वादन कर सकता है जो कि सांसारिक विषयोपभोग से पूर्ण उपरत होगा जैसा कि 'अनन्त श्रीस्वामी अग्रदासजीमहाराज अपने कुण्डलियां में वर्णन करते हैं--यथा-"रस शृङ्गार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि। तुलवे को कोउ नाहिं सोइ अधिकारी जगमें, काञ्चन कामिनि देखि हलाहल जानत तन

में । यावत जगके भोग रोग सम त्यागेउ द्वन्दा । पियप्यारी रस सिन्धु मगन नित रहत अनन्दा । नही अग्र अस सन्त के सर लायक जगमाहिं रस० ॥

द्वितीय अर्थ यह है-विद्याविभूषण नामकके कोइ अपने मित्रके साथ इस काव्य की रचना की अर्थात् मित्रके द्वारा इस काव्य में कुछ बिचार बिमर्श किये । तथा ग्रंथ की परिशुद्धि एवं सौहार्द सूचित किये । (भाष्यकार कहते हैं श्रीहर्य्याचार्यविरचित इस काव्य में बहुत से विभाव अनुभावादि रसों का व्यङ्गय है किन्तु ग्रंथविस्तार के भय से इस भाष्यमें मैंने सभी (रसादि व्यङ्गयों) का नहीं वर्णन किया । (भाव यह है कि "अरथ अमित अति आखर थोरे" इस सूक्ति के अनुसार स्वल्प अक्षरों से अमित पदार्थों का वर्णन करना ही कवित्व गुण है, तत्रापि ऐकान्तिक रहस्यों का वर्णन तो आचार्यों ने अत्यन्त गम्भीर शब्दों में ही कियाहै अतएव रसमय काव्यों में शक्यार्थ की अपेक्षा लक्ष्यार्थकी अधिक प्रतिष्ठा दी गई है । इसी प्रकार इस ग्रंथमें भी प्रत्याहार रूपसे ही दिव्यलीलाओं का वर्णन है रसवेत्ता भावुकगण इसमें अपनी रसग्राहिणी बुद्धि से अनन्त भावों का अनुशीलन करते हुए परमानन्द प्राप्त करेंगे ऐसा भाष्यकार का संकेत है ॥१॥

[अब श्रीराजकिशोरीजू की कृपा का अनुसन्धान करते हुए भाष्यकार श्रीलाड़िलीजूसे प्रार्थना करते हैं स्वरचित "श्री-जानकि" इस श्लोक से—

हे श्रीजनकराजनन्दिनी ! सर्वविषयक एवं सर्वत्र फैलने

वाली आपकी कृपारूपी तरङ्गें आपमें सुशोभित हैं, ऐसा सभी सन्तगण कहते हैं, उन्हीं कृपातरङ्गों का सीकर को प्राप्तकर उद्धतमनवाला मैं भी 'हे देवि ! आपकी 'गीत" रूपी कमलके सुगंध को विस्तार करने में समर्थ हुआ हूं। अर्थात् इस ग्रन्थ का भाष्य करने में मैं सर्वथा असमर्थ था, किन्तु श्रीराजकिशोरीजू की अहैतुकी कृपाने हीं मुझे सामर्थ्य प्रदान किया, यह भाव है, यथा—

कृपानिवास श्रीरामप्रिया की कृपा अगम सब सुगम हमारे'॥१॥

नित्य निकुञ्ज विहार करो रतिरंग रंगी रहो लाड़िली गोरी।
प्रीतमप्रान सुजान के संग दिये गलबांह बसो हिय मोरी,
श्रीचन्द्रकलादि अली गुनआगरि नागरि रूप लखैं तृनतोरी
ईश मनाय अशीशैं सबै कि बनी रहे नित्यकिशोरकिशोरी।

इति श्रीसद्गुरुसदनीय पं० श्रीसीतारामशरण कृत 'रसबोधिनी' भाषाटीकायां षष्ठः सर्गः समाप्तः ॥६॥

श्रीसीतारामार्पणमस्तु

* सिद्धान्त *

विद्याविभूषणयुतो हरिरब्जनाभ-
पादारविन्दमधुपो यदिदं व्यधत्त ।
श्रीजानकीचरितगीतमुदग्रभावा-
स्तत्साधवः प्रतिदिनं मुदिताः पिबन्तु ॥

(श्रीजानकी गीत)

श्रीसरयूतट बीच वास सजिये तजिये जग ।
याही में कुशलात मोद मंगल अनुपम मग ॥
श्रीसीतावर स्वच्छ सुयश गाइये एकरस ।
श्रीयुगलानन्य प्रयास विना दम्पति कीजिये बस ॥

(श्रीयुगलविनोद विलास)

प्रो०—एस० पी० एस० श्रीहनुमत प्रेस, श्रीअयोध्याजी ।